नया जीवन

भाग एक

कक्षा छह के लिए हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

अनिरुद्ध राय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
मई 1997 बैसाख 1919
पाँचवाँ पुर्नमुद्रण
सितम्बर 2002 भाद्रपद 1924

PD 275T ML

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन सी ई आर टी कैम्पस	108, 100 फीट रोड होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू सी कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेशन बनाशकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली-110016	बैंगलूर 560085	अहमदाबाद 380014	24 परगना 743179

रू. 21.00

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द
नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा पैलिकन प्रेस, A-45, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया, फे
नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के लागू होने के साथ ही ऐसी शिक्षण सामग्री की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा जो इस नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो। इस नीति के अनुसार शिक्षा बाल केंद्रित होगी और बच्चो के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जाएगा। इस उद्देश्य-पूर्ति की दृष्टि से शिक्षाक्रम में कुछ ऐसे विषयों के समावेश पर बल दिया गया है जिनसे शिक्षार्थियों में प्रगतिशील, सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना तथा उदात्त जीवन मूल्यो के प्रति स्वस्थ अभिवृत्ति का विकास हो सके, ये विषय हैं : राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, हमारी सांस्कृतिक विरासत, लोकतांत्रिकता, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय, समतामूलक समाज, नर-नारी समानता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि। इन विषयों को 'केंद्रिक शिक्षाक्रम' कहा गया है। इन विषयों के समावेश से भारत के राष्ट्रीय जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान मिलने की पूरी संभावनाएँ हैं।

उपर्युक्त केंद्रिक शिक्षाक्रम के संदर्भ में विभाग ने उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6,7,8), पर हिंदी शिक्षण से संबंधित पूर्व निर्धारित पूरक पुस्तकों पर नए सिरे से विचार करने और तदनुकूल पूरक पुस्तकों का निर्माण करने की योजना का संकल्प किया। पूर्व निर्धारित पुस्तकें थीं :

कक्षा 6 - संक्षिप्त रामायण

कक्षा 7 - (1) संक्षिप्त महाभारत, (2) नया जीवन

कक्षा 8 - (1) जीवन और विज्ञान, (2) त्रिविधा

इन पर विचार करने के लिए एक विभागीय समिति गठित हुई। उसके बाद इस समिति द्वारा प्रस्तुत संस्तुतियों पर विचार करने के लिए भाषा-विशेषज्ञों की एक विचारगोष्ठी आयोजित की गई। इस कार्यगोष्ठी में परिषद् के निदेशक, विभागीय समिति के सदस्य, विभागाध्यक्ष तथा विषय-विशेषज्ञ समिति के सदस्यों ने भाग लिया। इस विचारगोष्ठी में निर्णय लिया गया कि,

1. कक्षा 6 में सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से पूर्व निर्धारित 'संक्षिप्त रामायण' के महत्त्व को देखते हुए उसे यथावत रखा जाए पर उसका पुनरीक्षण और

उसमें यथोचित संशोधन अवश्य कर लिया जाए।

2. कक्षा 7 में भी पूर्व निर्धारित 'संक्षिप्त महाभारत' को यथावत् रखा जाए। सांस्कृतिक विरासत और नैतिक जीवन मूल्यों की दृष्टि से उसे सर्वथा उपयुक्त समझा गया पर इसके भी पुनरीक्षण और यथोचित संशोधन का सुझाव दिया गया।
3. कक्षा 8 में रामायण और महाभारत की ही भाँति किसी ऐसे प्रसिद्ध प्रबंधात्मक काव्य को रखने का सुझाव प्रस्तुत किया गया जिससे भारत की गौरवमयी संस्कृति का परिचय छात्रों को मिले। इस दृष्टि से महाकवि अश्वघोष रचित 'बुद्धचरित' को उपयुक्त समझा गया। निश्चय किया गया कि रामायण और महाभारत के समान ही इस ग्रंथ का भी सहज, सरल और रोचक हिंदी भाषा में संक्षिप्त संस्करण तैयार किया जाए।
4. कक्षा 8 में पूर्व निर्धारित 'जीवन और विज्ञान' तथा 'त्रिविधा' पूरक पुस्तक को हटाने का निर्णय लिया गया और यह सुझाव रखा गया कि कक्षा 6,7,8 में क्रमश: रामायण, महाभारत और बुद्धचरित के साथ-साथ एक-एक पूरक पुस्तक और रखी जाए। इन पूरक पुस्तकों में हिंदी के अतिरिक्त भारत की हिंदीतर भाषाओं तथा कुछ विदेशी भाषाओं से भी ऐसी रचनाएँ शामिल की जाएँ जो आधुनिक राष्ट्रीय संदर्भों से जुड़ी हो तथा छात्रों में व्यापक मानवीय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में सहायक और प्रेरणादायी सिद्ध हों।

इन रचनाओं में केंद्रिक शिक्षाक्रम से संबंधित कहानी, जीवनी, एकांकी, यात्रा वृत्तांत, संस्मरण आदि का चयन किया जा सकता है।

भारत की हिंदीतर भाषाओं से उपर्युक्त प्रकार की रचनाओं को शामिल करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि इनके द्वारा हिंदी में अखिल भारतीय साहित्य की छवि उजागर हो।

उपर्युक्त योजना के अंतर्गत कक्षा 6 के लिए पूरक पाठ्यपुस्तक के रूप में 'संक्षिप्त रामायण' का संशोधित संस्करण तैयार किया गया है। इसके अतिरिक्त दूसरी पूरक पाठ्यपुस्तक 'नया जीवन भाग 1' का प्रणयन भी किया गया है। इसमें हिंदी के अतिरिक्त असमिया, उर्दू, गुजराती, तमिल, रूसी, पंजाबी और बँगला कहानियों (हिंदी में अनूदित) को रखा गया है, जो आज के सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं और जीवनमूल्यों से जुड़ी हुई हैं, यथा : अंत:करण की सात्विकता, आत्म परखता (जातक कथा), प्रगाढ़ मैत्री, एकात्मकता और मातृवत्सलता की महत्ता (अदल-बदल), भौतिक सुख-सुविधा की अपेक्षा स्वातंत्र्य- प्रेम की श्रेष्ठता (कुत्ता और बाघ), दीन-दुखियों, जीव-जंतुओं के प्रति प्रेम और सेवा-भावना (विशेष

पुरस्कार), स्वतंत्रता संघर्ष के समय क्रांतिकारी जीवन की एक. झाँकी, गांधी जी के जीवन का एक प्रेरक प्रसंग (एक फूल), शोषण और अन्याय के विरुद्ध जागरूकता (अन्याय के विरुद्ध), आदर्श शासक, दानशीलता, प्रजावत्सलता और न्यायप्रियता का चित्रण (दानी कुमणन), अपराध बोध और परोपकार की भावना से आत्मशुद्धि और उदात्तीकरण (शापमुक्ति), आधुनिक मानव का अहंभाव (देवताओं की सभा में लेखक), निरर्थक बात करने वालों के प्रति व्यंग्य (बातूनी), बालश्रम का शोषण (जी, आया साहब), वर्ग विषमता मिटाने में बालक और प्रौढ़ों के सोच में अंतर (भविष्य का भय)।

इन कहानियों से निश्चित ही हिंदी भाषा का वह रूप सामने आएगा जिसमें अखिल भारतीय जीवन की छवि प्रतिभासित होगी।

इस पुस्तक का निर्माण सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग में उच्च प्राथमिक स्तर के लिए हिंदी पाठ्यपुस्तक-निर्माण योजना से संबद्ध डॉ. अनिरुद्ध राय ने किया है, इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक विद्वानों, लेखकों, शिक्षकों तथा भाषाशास्त्रियों का सहयोग मिला है, इसके लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। जिन लेखकों एवं अनुवादकों ने अपनी रचनाएँ इस पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति हमें दी है, उनके प्रति हम विशेष रूप से कृतज्ञ हैं।

मुझे विश्वास है कि बच्चों के भावात्मक विकास तथा चरित्र निर्माण में यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी। इसके परिष्कार की दृष्टि से सुधी विद्वानों के सुझावों का हम सदा स्वागत करेंगे।

अशोक कुमार शर्मा

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली

मई 1997

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में कृपापूर्ण योगदान के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् निम्नलिखित विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है :

श्री निरंजन कुमार सिंह, प्रोफ़ेसर माणिक गोविंद चतुर्वेदी, डॉ. आनंद प्रकाश व्यास, श्री प्रभाकर द्विवेदी, डॉ. मानसिंह वर्मा, श्रीमती देवलीना केजरीवाल, श्री रमेश उपाध्याय, श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डॉ. श्यामबिहारी राय, कुमारी इंद्रा सक्सेना, डॉ. (श्रीमती) सुधा सक्सेना और डॉ. जे. एल. रेड्डी ।

पाठ-सूची

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

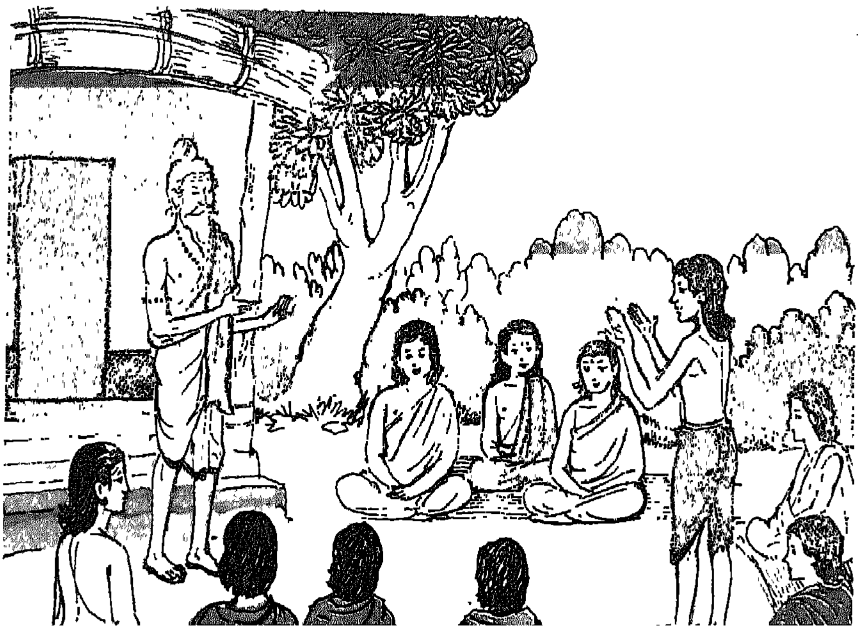
1. धन की खोज

बात प्राचीन युग की है।

एक गुरुकुल था – विशाल और प्रख्यात। उसके आचार्य भी बहुत ही विद्वान और यशस्वी थे।

एक दिन आचार्य ने सभी विद्यार्थियों को विद्यालय के प्रांगण में बुलाया और उनसे कहा, "प्रिय छात्रो, मैंने तुम्हें एक विशेष प्रयोजन से बुलाया है। मेरे सामने एक समस्या आ गई है। मेरी कन्या विवाह-योग्य हो गई है, किंतु उसका विवाह करने के लिए मेरे पास पर्याप्त धन नहीं है। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ?"

कुछ विद्यार्थी, जिनके माता-पिता धनवान थे, आगे बढ़े और बोले,



"गुरुदेव, हम अपने माता-पिता से धन माँग लाएँगे। आप उसे गुरु-दक्षिणा के रूप में स्वीकर कर लीजिएगा।"

आचार्य बोले, "मुझे इसमें संकोच होता है। तुम्हारे परिवार वाले सोचेंगे कि गुरु लोभी है। अपनी कन्या का विवाह शिष्यों के धन से करना चाहता है।"

आगे बढ़े हुए शिष्य पीछे हट गए। आचार्य सोच में पड़े रहे।

कुछ समय बाद आचार्य बोले, "एक उपाय है। तुम लोग धन ले आओ, किंतु माँगकर नहीं। तुम उसे ऐसे लाओ कि किसी को पता न चले। मेरा काम भी हो जाएगा और मेरी लाज भी रह जाएगी।"

शिष्यों ने बात मान ली।

जो विद्यार्थी धनी परिवारों के नहीं थे वे गुरु-सेवा से वंचित न रह जाएँ यह सोचकर आचार्य उन लोगों से बोले, "तुम भी अपने-अपने घरों से कुछ न कुछ ले ही आना, पर ध्यान रखना कि किसी की भी दृष्टि उसपर न पड़े। यदि किसी ने देख लिया तो वह वस्तु विवाह के लिए अशुभ हो जाएगी।"

शिष्यों ने विश्वास दिलाकर कहा, "हम जो कुछ भी लाएँगे, इसी प्रकार लाएँगे।"

दूसरे दिन से आज्ञाकारी शिष्य तरह-तरह की वस्तुएँ लाने लगे। आचार्य उन्हें प्रसन्नता से ग्रहण करते जाते।

कुछ दिनों बाद उन्होंने देखा कि विवाह के लिए पर्याप्त सामग्री एकत्र हो गई है। परंतु एक विद्यार्थी ऐसा भी था जो अभी तक कुछ

न ला सका था। आचार्य ने उससे पूछा, "क्यों, तुम्हारे परिवार वाले बिलकुल ही धनहीन हैं ?"

विद्यार्थी बोला, "आचार्यवर, मेरे घर में किसी बात की कमी तो नहीं है, किंतु मैं कुछ ला नहीं पाया हूँ।"

"क्यों, क्या तुम गुरु-सेवा नहीं करना चाहते ?"

"नहीं गुरुदेव, यह बात नहीं है। आपने कहा था कि ऐसी वस्तु लाना जिसे उठाते समय कोई देख न रहा हो। मैंने बड़ी चेष्टा की, पर घर में कभी ऐसा स्थान न मिला जहाँ कोई भी न देख रहा हो।"

"तुम झूठ बोल रहे हो। कभी-न-कभी तो कोई स्थान अवश्य रहता होगा जहाँ कोई न हो। तभी चुपके-से कुछ उठा लाओ।"

"गुरुदेव ठीक है। पर ऐसे स्थान में कोई दूसरा रहे या न रहे, मैं तो वहाँ रहता ही हूँ। अन्य कोई देखे या न देखे, किंतु मैं तो



अपने कुकर्म को देखता ही रहूँगा।"

आचार्य ने तुरंत उस शिष्य को गले लगा लिया और कहने लगे, "बस तू ही मेरा सच्चा शिष्य है। मेरे कहने पर भी तूने पाप-मार्ग नहीं अपनाया। यह तेरे चरित्र की दृढ़ता का परिणाम है और यही मेरी शिक्षा की सफलता है। अपनी कन्या के विवाह के लिए मुझे धन की आवश्यकता नहीं थी। मैं तो एक ऐसे युवक को खोज रहा था जिसके पास शील, सदाचार और चरित्र का धन हो। मैंने उसे आज पा लिया। तू ही मेरी कन्या के लिए योग्य वर है।"

– *'जातक कथा' से*

प्रश्न

1. छात्रों के सामने आचार्य ने अपनी कौन-सी समस्या रखी ?
2. छात्रों ने उस समस्या का क्या समाधान सुझाया और आचार्य ने उसे स्वीकार क्यों नहीं किया ?
3. समस्या के हल के लिए आचार्य ने अपनी ओर से क्या सुझाव दिया ?
4. घर में सब कुछ होते हुए भी एक शिष्य आचार्य के लिए कुछ भी क्यों नहीं लाया ?
5. कुछ भी न ला सकने वाले शिष्य को ही आचार्य ने अपनी कन्या के लिए योग्य वर क्यों माना ?

2. अदल-बदल

होली की सुहावनी शाम थी। बच्चे मोहल्ले के बीच में लगे नीम के पेड़ के नीचे इकट्ठे हुए थे। वे एक-दूसरे पर धूल उड़ा रहे थे और खेल रहे थे।

इतने में वहाँ अमरत और इसब आ पहुँचे। वे एक-दूसरे के कंधे पर हाथ रखे थे। दोनों ही नई कमीज़ और निकर पहने थे, एक ही आकार के, एक ही नाप के और उसी दिन सिलाए हुए। वे दोनों एक ही स्कूल में जाते और एक ही कक्षा में पढ़ते थे। दोनों के घर भी आमने-सामने थे।

अमरत और इसब के माँ-बाप का व्यवसाय भी एक ही था, खेती का। स्थिति भी समान थी। बनिया पाँच बार मना करने पर एक बार कर्ज़ा देता था।

संक्षेप में, इन दोनों दोस्तों के बीच यदि कोई अंतर था तो वह इतना ही कि अमरत की माँ थी, पिताजी थे और तीन भाई थे। लेकिन इसब की माँ नहीं थी, भाई भी नहीं थे, केवल पिताजी थे।

इन दोनों दोस्तों को एक ही प्रकार के कपड़ों में देखकर चबूतरे पर बैठे हुए दो-तीन लड़के बोल उठे, "अरे ओ, अमरत-इसब, कहीं अदल-बदल न हो जाना।"

दूसरे लड़के को शरारत सूझी, "भाई लड़कर तो दिखाओ। उसमें

भी दोनों बराबर हो या कम ज़्यादा ?"

वहाँ पर खड़े दूसरे लड़के भी बोल उठे, "हाँ, हाँ अमरत, ठीक तो है इसब ! देखें तो सही कौन जीतता है।"

पहला लड़का बोला, "यह लड़ाई कोई गुस्से में तो हो नहीं रही। वैसे ही लड़ना है।"

इसब ने अमरत की ओर देखा।

अमरत बोला, "ना भाई ना, मेरी माँ मुझे मार डालेगी।"

अमरत का भय ठीक ही था। घर से निकलते समय माँ ने चेतावनी दी थी, "देखो, ज़िद करके नए कपड़े बनवाए हैं, अब कहीं फाड़े या गंदे किए तो फिर देख लेना।"

बात सही थी। इसब ने कमीज़ और निकर सिलवाने के लिए दिए थे, यह सुनकर अमरत ने भी ज़िद की थी, "इसब जैसे कपड़े सिलवाओ तभी स्कूल जाऊँगा।"

माँ ने कहा था, "बेटा, इसब लता-पत्तों को बाँधता था इसलिए उसके कपड़े फट गए थे। तेरे तो अब भी ठीक हैं।"

"कहाँ ठीक हैं ? यह देखो !" कहकर अमरत ने कमीज़ के एक छेद में उँगली डालकर उसे और भी फाड़ डाला था।

तब माँ ने एक बात और कही, "इसब को उसके बाप ने कल ऊपर लटका कर कैसा मारा था ? बेटे, उसे तो मार भी खानी पड़ती है और नए कपड़े भी उसी को मिलते हैं।"

लेकिन अमरत ऐसी बातों में असल बात को भूलने वाला नहीं

था, "तो फिर मुझे भी बाँध कर मारो। लेकिन मेरे लिए भी इसब जैसे कपड़े तो सिलवाने ही होंगे।"

"तो कहो अपने पिताजी से।" माँ ने जैसे अपने सिर से जिम्मेदारी उठाकर बाप पर डाल दी।

लेकिन माँ नहीं मानेगी तो पिताजी कैसे मानेंगे ? अमरत ने भी ज़िद नहीं छोड़ी। स्कूल नहीं गया, खाना नहीं खाया, रात को घर पर सोया तक नहीं।

फिर माँ ने अपने पति को समझाकर नए कपड़े सिलवाने की अनुमति ले ली। अमरत को इसब की गोशाला में से ढूँढ़कर घर ले आई।

इन सबके बाद इसब की तरह सज-धज कर गाँव से निकला हुआ अमरत ऐसा काम कैसे कर सकता था जिससे उसके कपड़ों को कोई नुकसान हो ? और फिर वह लड़ाई भी इसब के साथ !

पर इतने में उस टोली से एक शरारती लड़का आगे निकलकर सीधा अमरत के पास गया। आते ही उसने अमरत के गले में हाथ डालकर कहा, "तो फिर चल, हम दोनों लड़ते हैं।" और उसे खुली जगह में खींच ले गया।

लेकिन अमरत लड़ना चाहता हो तभी उसको मारेगा ना ? वह तो उससे छूटने की कोशिश करने लगा, "छोड़ दो मुझे, छोड़ दो। मुझे नहीं लड़ना। देख ले कालिया, मना कर रहा हूँ ....।"

इतने में तो कालिया ने उसे ज़मीन पर पटक दिया। यह देखकर टोली के लड़के खुश हो गए और चिल्लाने लगे, "वाह-वाह, अमरत

हार गया। कालिया बहादुर है। जीत गया ... जीत गया ...।"

यह देखते ही इसब को गुस्सा आ गया। वह कालिया को ललकार कर बोला, "आ जा, मेरे सामने आ जा।"

कालिया झिझक गया। पर दूसरे लड़के उसका जोश बढ़ाने लगे। फिर तो दोनों की कुश्ती शुरू। दोनों ऐसे लड़े कि नीचे गिरा हुआ कालिया फूट-फूटकर रोने लगा।

दूसरे लड़कों ने देखा कि हँसी-मज़ाक का खेल उलटा ही हो गया। उन्होंने अमरत का बदला लेने के लिए गए हुए इसब के हाथ से कालिया को छुड़वाया और फिर उसे रोता हुआ छोड़कर सारे लड़के इधर-उधर खिसक गए। उनको डर था कालिया के माँ-बाप से डाँट पिट जाने का।

अमरत इसब को लेकर भाग निकला। आगे चलकर इसब की फटी हुई कमीज़ की ओर उसका ध्यान गया। जेब के सांथ डेढ़ बालिश्त लंबा टुकड़ा लटक रहा था।

उसे देखते ही दोनों वहाँ के वहाँ ठिठक गए। आधी जीभ बाहर को निकल पड़ी। चारों भयभीत आँखें उस टुकड़े पर जा चिपकीं, "अब?"

उस रोते हुए लड़के की आवाज़ सुनकर या और किसी कारण से इसब के बाप ने घर से आवाज़ लगाई, "अरे, ओ इसबा, कहाँ गया रे ?"

दोनों लड़कों की धड़कने मानों बोल रही थीं कि अब मारे गए। दोनों को निश्चित रूप से मालूम था कि कमीज़ का फटा टुकड़ा देखकर

इसब का पठान बाप उसकी चमड़ी के भी टुकड़े-टुकड़े कर देगा।

और नहीं तो क्या ! कितनी मिन्नतें करने के बाद बनिया ने यह कपड़ा उधार दिया था।

फिर से आवाज़ सुनाई दी, "अबे कौन रोता है ? इसब कहाँ गया?"

दोनों लड़कों को शक हो गया कि शायद वह उसी ओर आ जाएँगे।

अचानक अमरत के दिमाग में बिजली कड़की। वह इसब को एक तरफ़ ले गया, "अरे आ तो सही !"

फिर दो घरों के बीच की सँकरी गली में जाकर अमरत अपनी कमीज़ निकालते हुए कहने लगा, "निकाल ... जल्दी निकाल ... और यह ले, मेरी पहन ले।"



इसब तो भौंचक्का रह गया। बोला, "और तुम ?"

"मैं तेरी पहन लूँगा। अदल-बदल कर लेते हैं। जल्दी कर, कोई देख लेगा।"

इसब बटन खोलने लगा लेकिन उलझन में भी पड़ गया। उसने पूछा, "अदल-बदल? लेकिन

तेरे पिताजी तुझे मारे बिना नहीं छोड़ेंगे।"

अमरत इसब की कमीज़ निकालने में मदद करने लगा और बोला, "लेकिन मेरी तो माँ है न !"

बात सही थी। इसब ने कई बार देखा था, पिताजी की मार से बचने के लिए अमरत अपनी माँ के पीछे छुप जाता था। हाँ, माँ से भी एक दो चपत मिल जाती थी, लेकिन वह तो इसब को गुड़ जैसी मीठी लगती थी।

फिर भी इसब इस अदल-बदल के लिए राज़ी न होता, लेकिन उसी समय बाहर कुछ आवाज़ हुई तो इसब ने झट से अपनी कमीज़ निकाल दी और दोनों ने एक-दूसरे की पहन ली। फिर दोनों गली में से बाहर निकले और डरते, सकुचाते अपने-अपने घर की ओर चलने लगे। अमरत का दिल तो डर के मारे ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

पर वह तो त्योहार का दिन था और वह भी होली की चहल-पहल वाला त्योहार। इसलिए अमरत की माँ ने अमरत के अपराध को थोड़ा-सा गुस्सा दिखाकर माफ़ कर दिया। सूई-धागा लेकर कमीज़ के फटे हुए हिस्से को भी सी दिया। इसके साथ ही दोनों बच्चों का वह डर और संकोच दूर हो गया।

दोनों दोस्त फिर से एक दूसरे के कंधों पर हाथ रखकर होली जलाने के लिए गाँव से बाहर निकल गए। दोनों के दिलों में अपूर्व आनंद था।

लेकिन इतने में किसी रहस्य जानने वाले लड़के ने उनके आनंद

को उड़ा दिया। आँख मिचकाते हुए वह बोला, "क्यों ? अदल-बदल?"

अमरत और इसब समझ गए कि यह लड़का ज़रूर देख गया है। दोनों वहाँ से खिसक गए।

अब तो सभी लड़के जान गए कि 'अदल-बदल' बोलने से ये चिढ़ते हैं तो वे जहाँ भी जाते थे वहाँ लड़के उन्हें चिढ़ाते थे, "क्यों रे, अदल-बदल?"

बेचारे जाएँ भी कहाँ ? बच्चे उनके पीछे दौड़-दौड़ कर उन्हें छेड़ते रहे– अदल-बदल ! अदल-बदल !

सारा भंडा फूट जाने के डर से दोनों होली के स्थान से घर लौट आए।

आँगन में चारपाई बिछाकर इसब के पिताजी हुक्का पी रहे थे। उन्होंने दोनों बच्चों को अपने पास बुलाया और पूछा, "यूँ अलग-अलग क्यों घूम रहे हो ? आओ, यहाँ बैठो।"

इसब के पिताजी की इतनी मीठी आवाज़ सुनकर दोनों काँप उठे। दोनों को लगा कि पिताजी को सही बात मालूम हो गई है, इसलिए इतने स्नेह का दिखावा कर रहे हैं।

इतने में पठान बाप खड़ा हो गया और उठते ही उसने दस साल के अमरत को उठा लिया। फिर आवाज़ दी, "अरी वहाली भाभी, आज से तुम्हारा अमरत मेरा है।"

भाभी हँसते हुए आई और बोली, "हसन भैया, एक बेटा तो तुमसे सँभलता नहीं।"

"लेकिन आज से इक्कीस भी हों न, तो सँभाल लूँगा।" पठान का गला भर आया।

वहाली को आश्चर्य हुआ।

गला साफ़ करके, पठान ने दोनों बच्चों को उसी गली में जाते हुए देखा था, यह बात बताई और बोला, "मैंने सोचा, जाकर देखूँ तो बात क्या है?"

पठान को किस्सा सुनाते हुए देखकर मोहल्ले की और महिलाएँ भी इकट्ठी हो गईं। लेकिन बात कोई लंबी नहीं थी। उसने कमीज़ निकालकर उसकी अदल-बदल की बात कही और बोला, "इसब ने पूछा कि तेरे पिताजी मारेंगे तो ? लेकिन तुम्हारा अमरत क्या बोला जानती हो ? बोला कि मेरी तो माँ है न !"

पठान की फिर से आँखें भर आईं। उसने कहा, "सच कहता हूँ। इसकी इतनी-सी बात ने मेरा दिल साफ़ कर डाला, मेरा दिमाग ठिकाने पर ला दिया।" उसने इसब को प्यार से गले लगा लिया और उसकी पीठ दुलारते हुए बोला, "अब तुम्हें कभी अपनी अम्मी का अभाव महसूस नहीं होगा।"

मोहल्ले की महिलाएँ भी इन बच्चों का परस्पर प्रेम देखकर दंग रह गईं।

इतने में होली जलाकर लौटते हुए बच्चों ने अमरत-इसब को देखा और छेड़ना शुरू कर दिया, "अमरत-इसब, अदल-बदल भाई अदल-बदल।"

लेकिन अब तो डरने की बात ही नहीं थी। अमरत और इसब उलटे खुश हुए।

अदल-बदल की बात सारे गाँव में फैल गई। होली जल रही थी, वहाँ भी वही बात। स्वयं मुखिया ने ऐसे घोषणा की मानो नए नाम का खिताब दे रहा हो, "आज से अमरत का नाम अदल और इसब का नाम बदल रखा जाए।"

और इसके साथ ही गाँव के सारे बच्चे खुश हो गए। केवल गाँव ही नहीं गगन भी गूँज उठा, "अमरत-इसब, अदल-बदल। अदल-बदल भाई अदल-बदल।"

अनु. वर्षा दास

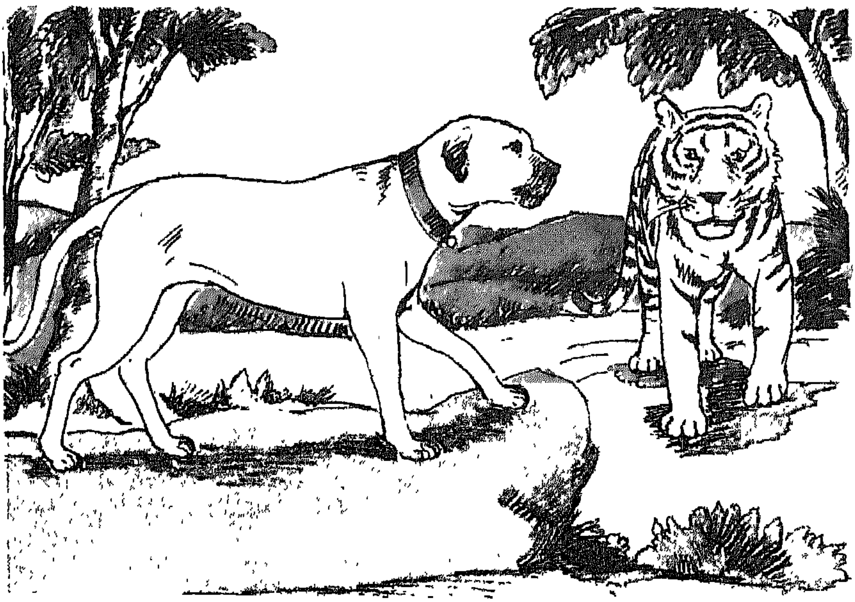
प्रश्न

1. अमरत और इसब के पारिवारिक जीवन में क्या असमानता थी ?
2. अमरत की माँ अमरत के लिए इसब जैसे कपड़े सिलवाने को क्यों तैयार हो गई ?
3. कालिया की जीत पर इसब को गुस्सा क्यों आया और उसका क्या परिणाम निकला ?
4. क्या तर्क देकर अमरत ने इसब को कमीज़ की अदल-बदल के लिए राज़ी कर लिया ?
5. अमरत और इसब का होली का आनंद क्यों समाप्त हो गया ?
6. 'अब तुम्हें कभी अपनी अम्मी का अभाव महसूस नहीं होगा।' इसब के पिता ने ऐसा क्यों कहा ?

3. कुत्ता और बाघ

एक मोटे ताज़े हट्टे-कट्टे पालतू कुत्ते के साथ एक बार दुबले-पतले शरीर वाले बाघ की मुलाकात हो गई। बातचीत के दौरान बाघ ने कहा, "एक बात पूछना चाहता हूँ भाई! तुम्हें बताना ही पड़ेगा कि कैसे और क्या खाकर तुम इतने ताकतवर और हट्टे-कट्टे बन गए हो ? तुम क्या खाते हो और किस तरह रोज की खुराक जुटा पाते हो? मैं तो दिन-रात खाना जुटाने की कोशिश कर-कर हार-सा जाता हूँ, फिर भी भरपेट खाना नहीं जुटता। किसी-किसी दिन तो भूखे पेट ही रह जाना पड़ता है। खाना न मिलने से ही मैं इतना कमज़ोर और दुबला हो गया हूँ।"

कुत्ते ने कहा, "जो मैं करता हूँ, वह अगर तुम भी कर सको तो मेरे जैसी ही तुम्हें भी खुराक मिल सकती है।"



बाघ ने अचरज से पूछा, "सच कह रहे हो ? तो ठीक है भाई। पर बताओ तो सही तुम्हें इतने अच्छे खाने के लिए कौन-कौन से काम करने पड़ते हैं ?"

उस पालतू कुत्ते ने कहा, "करना क्या है ? कुछ भी तो नहीं। सिर्फ रातभर मालिक के घर की देख-रेख करनी पड़ती है।"

बाघ ने कहा, "बस इतना ही ! यह काम तो मैं भी कर सकता हूँ। आहार जुटाने के लिए, मैं जंगल-जंगल भटकता हूँ। सरदी, गरमी और बरसात में कष्ट पाता हूँ। पर भाई अब यह कष्ट नहीं सहा जाता। अगर धूप, बारिश और सरदी में एक छत मिल जाए और भूख के समय भरपेट खाना तो फिर जीवन में और क्या चाहिए ?"

बाघ के दुःख की बात सुनकर कुत्ते ने कहा, "तो मेरे साथ आओ। मैं अपने मालिक से कहकर तुम्हारा भी इंतजाम करवा दूँगा।" यह सुनकर बाघ कुत्ते के पीछे-पीछे हो लिया।

चलते-चलते बाघ की नज़र एकाएक कुत्ते की गरदन पर पड़ी। उसने यों ही पूछा, "भाई तुम्हारी गरदन में यह निशान कैसा ?"

कुत्ते ने कहा, "कुछ भी तो नहीं।"

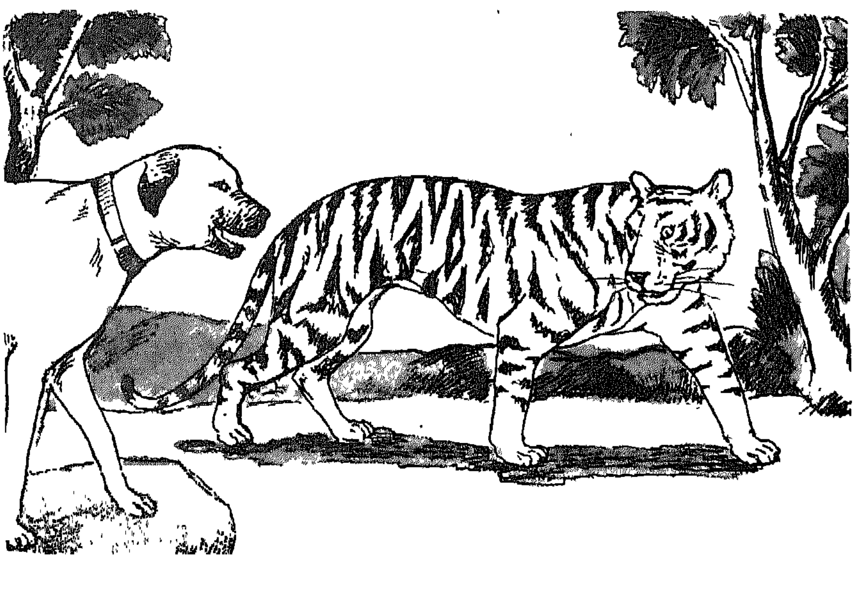
बाघ ने ज़िद की, "नहीं भाई यह तो तुम्हें बताना ही होगा कि तुम्हारी गरदन के रोएँ का रंग कैसे उड़ गया ? यह दाग आखिर पड़ा कैसे ?"

कुत्ते ने फिर कहा, "यह कुछ भी तो नहीं। लगता है तुम यह पट्टा बाँधने की वजह से गले पर पड़े दाग के बारे में पूछ रहे हो।"

बाघ ने पूछा, "गले में पट्टा ? यह कौन-सी चीज़ है ?" कुत्ते ने कहा "उसी गले के पट्टे वाली ज़ंजीर से तो दिन में मुझे बाँधकर रखा जाता है।"

यह सुनते ही बाघ चौंक उठा। उसने पूछा "तुम्हारा मालिक तुम्हें ज़ंजीर से बाँधकर रखता है ? भला क्यों ? फिर तो तुम अपनी मर्ज़ी से कहीं आ-जा भी नहीं सकते ?"

कुत्ते ने कहा, नहीं ऐसी बात तो नहीं। दिन में मैं अवश्य बँधा हुआ रहता हूँ पर रात को जब मुझे खुला छोड़ा जाता है तो मेरी मर्ज़ी, मैं कहीं भी जाऊँ और फिर मालिक के नौकर-चाकर भी मुझे बहुत प्यार करते हैं। मेरी देखभाल करते हैं। मुझे अच्छे-से-अच्छा खाना देते हैं, मुझे नहलाते हैं। मालिक भी प्यार से मुझे कभी-कभी थपथपा देते हैं। स्वयं ही देख लो मैं कितना सुखी तथा आनंद में हूँ।"



यह सब सुनकर बाघ ने कहा, "रे भाई, अपना यह सुख अपने ही पास रहने दो। मुझे इस तरह का सुख कतई मंजूर नहीं। इस तरह दूसरे के अधीन रहकर राज-भोग, राज-सुख से कहीं अधिक बेहतर है खाना न खाना। भोजन न जुटा पाने का कष्ट तो इस कष्ट से सौ गुना अच्छा है। बुरा मत मानना मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकता।"

इतना कहकर बाघ दूसरी तरफ़ मुँह घुमाकर जंगल की तरफ़ चल दिया।

अनु. देवलीना केजरीवाल

प्रश्न

1. बाघ ने कुत्ते को अपने दुबले होने का क्या कारण बताया ?
2. कुत्ते ने बाघ को भरपेट खुराक पाने का क्या उपाय बताया ?
3. कुत्ते की बात को सुनकर बाघ क्यों चौंक उठा ?
4. 'रे भाई, अपना यह सुख अपने ही पास रहने दो। मुझे इस तरह का सुख कतई मंजूर नहीं।' बाघ के इस कथन से हमें क्या संदेश मिलता है ?

4. विशेष पुरस्कार

"उफ़, कितना दुष्ट है यह लड़का ! इसे पीटकर सीधा किए बगैर नहीं चलेगा। लड़कों के साथ इसके लड़ने-झगड़ने की कई वारदातें मैं सुन चुका हूँ।" हेडमास्टर ने अपने आपसे कहा और चौकीदार मोहन को ऊँची आवाज़ में पुकारा, "मोहन, मोहन !"

हेडमास्टर के गरजने की आवाज़ से ही मोहन समझ गया कि उनका पारा चढ़ा हुआ है। तीन छलाँगों में वह कमरे से बाहर निकल आया और हेडमास्टर के पास पहुँचकर उसने सहमते हुए पूछा, "जी. सर !"

"तुरंत जाकर पाँचवीं कक्षा के तपन को बुला ला।" हेडमास्टर ने आदेश दिया।

मोहन एकदम कमरे से निकल गया।

यहाँ तपन का ज़रा परिचय दे दिया जाए। तपन पदुमनि गाँव के किरानी का मँझला लड़का था। छरहरे कद का होने पर भी बड़ा बलिष्ठ। रंग साँवला, बड़ी-बड़ी आँखें, फुरतीला, साथ ही पढ़ने-लिखने में भी तेज़। मगर क्या घर, क्या बाहर, उसके उपद्रवों की कोई सीमा नहीं। बेकार की बातों में उलझने में माहिर। घर के लोग भी उससे आतंकित रहते। वह पहले या बिना कारण किसी को परेशान नहीं करता था, किसी से झगड़ा-टंटा नहीं करता था। पर अगर कोई उससे उलझे या चिढ़ा दे तो बस, फिर उसकी खैर नहीं। हम उम्र लड़कों

का तो वह सरदार ही था। किसी को कोई बेवजह मारे या गाली दे दे तो उसे बता देना भर काफी था। उसे वह बिलकुल ठीक करके ही छोड़ता। यूँ कहा जाए तो वह सही मायने में बेसहारों का सहारा था। इसी कारण उसके साथी लड़के जहाँ उसे पसंद करते, वहीं उससे डरते भी थे।

गाँव के प्राथमिक स्कूल की आखिरी परीक्षा पास करने के बाद वह पंद्रह मील दूर अपने मामा के यहाँ चला गया था और वहाँ के हाई स्कूल में सिर्फ़ सालभर पढ़ने के बाद फिर घर लौट आया और गाँव से डेढ़ मील दूर के ज्ञानपीठ हाई स्कूल में भरती हो गया।

इस हाई स्कूल में उसे आए अभी सिर्फ़ एक माह हुआ था। इसी बीच उसकी शिकायतें आने लगीं। पदुमनि गाँव के ही व्यापारी हरेन महाजन ने तपन के खिलाफ़ हेडमास्टर से फ़रियाद की। हेडमास्टर को



दी गई अपनी अर्ज़ी में उसने लिखा था – कल बदमाश तपन ने लड़कों के झुंड के साथ बिना कारण उसकी दुकान पर पत्थर बरसाए और उसके उकसाने पर दूसरे लड़कों ने दुकान में घुसकर गड़बड़ी की। इसलिए हेडमास्टर साहब इसका उचित फ़ैसला कर दें।

चौकीदार के साथ तपन आया और डरता हुआ हेडमास्टर की ओर नज़र डाल, सिर झुकाकर खड़ा हो गया। हेडमास्टर ने हाथ में पकड़ी हुई बेंत हिलाते हुए कहा, "ऐ लड़के, तेरा ही नाम तपन है ?"

"जी सर !" तपन ने विनम्रता से जवाब दिया।

"हूँ ! तू इस सज्जन को पहचानता है ?" पास खड़े हरेन महाजन की ओर उँगली से इशारा करते हुए हेडमास्टर ने तपन से पूछा।

"जी, इनका घर तो हमारे गाँव में ही है।" तपन ने पहले जैसे विनम्र भाव से ही जवाब दिया।

"हूँ ! ठीक है। कल शाम को लड़कों की टोली ले जाकर तूने इनकी दुकान पर पत्थर क्यों फेंके थे ? सच-सच बता। नहीं तो बेंत मार-मारकर तेरी चमड़ी उधेड़ दूँगा।" हेडमास्टर ने आँखें तरेर कर पूछा।

"जी सर, बंतू आदि के साथ इनकी दुकान पर मैंने पत्थर फेंके थे, यह सच है।" तपन बोला।

"क्यों फेंके थे पत्थर ? बदमाश कहीं का, बता ?" हेडमास्टर ने डाँटा।

"सर, चीज़ें बेचते समय यह आदमी ग्राहकों को ठगा करता है।

कीमत भी ज़्यादा लेता है, तौल में भी कम देता है। इसने कागज़ के ऐसे थैले बनवाए हैं जिनकी पेंदी में मोटी-मोटी दफ़्ती लगी रहती है। ऐसे थैले बनाने के लिए मोटी-मोटी दफ़्तियाँ मँगवा रखी हैं सर, परसों सवेरे इसके यहाँ से एक किलो दाल ली थी। घर लाकर तौली तो सिर्फ़ आठ सौ ग्राम दाल निकली। थैले को फाड़कर उसकी दफ़्ती तौलने पर पाया कि वह पचास ग्राम की थी। शेष डेढ़ सौ ग्राम इसने तौल में कम दिया था। गाँव के सभी लोग इसके बारे में कहा-सुना करते हैं। मैंने जब कल शाम को इससे दाल कम देने की शिकायत की तो इसने मुझे उलटे गालियाँ देकर दुकान से भगा दिया था सर ! इसी कारण मैंने लड़कों को साथ लेकर इसकी दुकान पर पत्थर फेंके थे।" तपन ने कहा।

हेडमास्टर ने हरेन महाजन के चेहरे पर नज़र डाली। उसका चेहरा स्याह पड़ गया था। हेडमास्टर ने कुछ सोचा। फिर तपन की ओर देखकर बोले, "जो भी हो, तूने यह काम अच्छा नहीं किया, किसी के यहाँ जाकर यों उपद्रव करना बड़ी बुरी बात है। अगर महाजन ने बुरा काम किया है तो उसका फ़ैसला सरकार या और लोग करेंगे। तुझे क्या पड़ी थी ? आ, हाथ फैला।"

एक-एक कर पाँच बेंत खाकर तपन कुछ देर के बाद कमरे से निकल गया। उसकी कक्षा के लड़के उसको देखकर व्यंग्य करते हुए हँस रहे थे। दो-एक ने आवाज़ें भी कसीं।

कुछ दिन बाद एक और घटना हो गई। एक उद्दंड साँड़ के उपद्रवों

के मारे वहाँ के बहुत से लोगों की नाक में दम हो गया था। कई लोगों को सींग मारकर उसने घायल कर दिया था। अगर कोई लकड़ी या डंडा लेकर आगे बढ़ता तो वह साँड़ तनकर उसकी ओर दौड़ पड़ता। साँड़ की वह रुद्र मूर्ति देखकर उसके सामने जाने की हिम्मत भला कौन कर सकता था। साँड़ के उपद्रवों से तपन के मन में उसके प्रति एक होड़ की भावना जाग उठी थी। उसने मन-ही-मन कहा – ठहरो बच्चू, तुम्हें मैं सीधा करके ही छोड़ूँगा।

कुछ सोच-विचार कर उस दिन विराम की घंटी में वह कहीं से एक रस्सी और एक सीटी ले आया था। चुपके से साँड़ के पास पहुँचकर मौके से न जाने कब और कैसे अचानक कूदकर उसकी पीठ पर सवार हो गया और घोड़े की भाँति साँड़ के मुँह में रस्सी की लगाम लगा दी। साँड़ पहले तो समझ ही नहीं पाया था। लेकिन जैसे ही पता चला कि उसकी पीठ पर शासन करने वाला कोई आदमी सवार है, तो उसका धीरज टूट गया। बात समझ में आते ही कूद-फाँद कर, हिल-डुलकर, दौड़-धूप कर कैसे भी हो, उसे नीचे गिरा देने की वह कोशिश करने लगा।

उधर स्कूल में पाँचवीं घंटी की पढ़ाई शुरू हो गई थी। मगर तपन का तो उधर ध्यान ही नहीं था। वह तो साँड़ को वश में करने में जुटा हुआ था। साँड़ की उछल-कूद के बावजूद तपन अपने को सँभाले हुए उसकी पीठ पर लगाम पकड़े रहा। एक बार लगाम खींचकर तपन ने साँड़ की पीठ पर दो-चार डंडे जमा दिए तो साँड़ बिलकुल मतवाला-सा

हो उठा। वह स्कूल की चहारदीवारी के अंदर घुस आया और सातवीं कक्षा में घुस कर इधर-उधर दौड़ने लगा। अचानक एक ऐसी चिंतनीय घटना देखकर उस कक्षा के शिक्षक और छात्रों के होश-हवास गुम हो गए। भगदड़ मच गई। जिसे जिधर जगह मिली, उधर भागा। धक्कम-धक्का, ठेलम-ठेल में कौन किस पर गिरा, कोई ठिकाना न रहा। शिक्षक रजनी चहरिया भी किसी तरह दौड़ते हुए बाहर निकल कर ही बच पाए। साँड़ की कूद-फाँद से स्कूल के दरवाज़े-खिड़कियों के बहुत-से शीशे टूट गए। वहाँ भी कोई चारा न पाकर साँड़ हँकड़ता हुआ बाहर दौड़ा और स्कूल के मैदान में धम्म से गिर पड़ा। तपन अपने को किसी तरह बचा पाया और कूदकर दूर जा पड़ा। साँड़ खड़ा होकर डर के मारे पीछे की ओर देखे बगैर तेज़ी से भागा .... बिलकुल हवा-सी दौड़, ... दौड़ते-दौड़ते वह स्कूल की चहारदीवारी से दूर निकल गया।

हेडमास्टर के पास तपन के खिलाफ़ फिर मामला आया। मामला लाने वाले थे खुद रजनी मास्टर। साँड़ के संबंध में तपन की शिकायत पाते ही हेडमास्टर आग-बबूला हो उठे। हरेन महाजन वाली और बीच-बीच में दूसरे लड़कों की छोटी-मोटी घटनाएँ याद आ जाने के कारण उनका मन और भी कड़वा हो उठा था। इस उत्पाती लड़के की करतूतों के कारण ही आज स्कूल के शिक्षक और छात्रों की ऐसी दुर्गति हुई और स्कूल का नुकसान भी हुआ। यह सोचकर हेडमास्टर ने तुरंत तपन को बुला लाने के लिए चौकीदार मोहन को भेज दिया।

क्षण भर बाद ही मोहन के साथ तपन डरते-डरते हेडमास्टर के सामने आया। तपन को देखते ही हेडमास्टर ने दाँत पीसते हुए बेंत हिला-हिला कर कहा, "अरे बदमाश, आज तूने उस साँड़ को कक्षा में क्यों घुसा दिया था ? बता, जल्दी बता, नहीं तो .."

"सर, मैंने जान-बूझकर साँड़ को कक्षा में नहीं घुसाया। मैं उसकी पीठ पर चढ़कर उसे वश में करना चाहता था, तभी वह दौड़कर कक्षा में घुस गया था। सिर झुकाकर तपन ने जवाब दिया।

"भला तू क्लास छोड़कर साँड़ की पीठ पर चढ़ने क्यों गया था? तुझे क्या पड़ी थी ? तो ले, हाथ फैला।"

हथेली पर हेडमास्टर की बेंत की पंद्रह चोटें झेलकर तपन अपनी कक्षा में आया। घृणा और व्यंग्य की हँसी से उसकी कक्षा के लड़कों ने उसका स्वागत किया। इस घटना के बाद तपन समूचे स्कूल में एक बुरे लड़के के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

कुछ ही देर बाद हर कक्षा में हेडमास्टर की सूचना आई। सूचना में लिखा था– पाँचवीं कक्षा के छात्र तपन ने एक साँड़ को सातवीं कक्षा में घुसाकर शिक्षक और छात्रों की दुर्गति की है तथा स्कूल के शीशे तोड़े हैं। इस अपराध के कारण उसे पंद्रह बेंत लगाई गई हैं और क्षति-पूर्ति के रूप में उस पर पच्चीस रुपए का जुर्माना किया गया है। भविष्य में ऐसा काम करने पर उसे स्कूल से निकाल दिया जाएगा। सूचना पाकर कुछ लड़कों ने मुँह टेढ़ा कर तपन की ओर देखा और कुछ ने उसकी हँसी उड़ाई।

उसी दिन शाम को हेडमास्टर स्कूल से लौटकर पदुमनि गाँव की तरफ़ घूमने निकले। बीच-बीच में वे योंही टहला करते थे। गाँव से वापस लौटते समय स्कूल के उस बदमाश लड़के तपन की एक और करतूत देख वे विस्मित हो उठे। एक भिखारिन की भीख माँगने की टोकरी अपने सिर पर लिए तथा एक हाथ से उस भिखारिन बुढ़िया को पकड़े तपन चला जा रहा था। कुछ दूरी पर उसी की कक्षा का एक लड़का नरेन और दूसरा महेश, उस बुढ़िया की टोकरी सिर पर रखने के कारण तपन की हँसी उड़ाते आ रहे थे।

बात यह थी कि गाँव से भीख माँगकर लौटते हुए उस बुढ़िया को ज़ोरों का बुखार चढ़ आया था। टोकरी लेकर चलना तो दूर, उसे खुद कदम बढ़ाना भी मुश्किल हो गया था। बुढ़िया की ऐसी बुरी हालत देखकर तपन के मन में बड़ी वेदना हुई। उसने तुरंत टोकरी को अपने



सिर पर ले लिया और कहा, "बूढ़ी दादी, मेरा हाथ पकड़कर चली चलो।" और बुढ़िया को हाथ से पकड़े वह उसके घर की ओर चल पड़ा था।

हेडमास्टर को आते देखकर नरेन और महेश ने उन्हें नमस्ते किया और तपन की ओर देखते हुए व्यंग्य से हँस दिए। मतलब, तपन की करतूत अब हेडमास्टर महोदय खुद ही देख लें। हेडमास्टर ने बात का पता लगाने के लिए बुढ़िया से पूछा। बुढ़िया ने बुखार से काँपते हुए सारी बातें बता दीं। तपन की ओर उँगली दिखाकर उसने कहा, "बाबा, यह बच्चा अगर न होता तो आज मुझे इसी सड़क के किनारे पड़े रहना पड़ता। भगवान इस लाल का भला करे। उन दोनों लड़कों ने भी मेरी हालत देखी थी, मगर मदद करना तो दूर, उलटे मेरी मदद करने वाले इस बच्चे की ही खिल्ली उड़ाते आ रहे हैं। कैसे निर्दयी हैं ये!" कहती हुई बुढ़िया थकावट के मारे हाँफने लगी।

सारी बातें समझकर हेडमास्टर ने नरेन और महेश को डाँटकर वहाँ से भगा दिया और बुढ़िया को उसके घर पहुँचा देने के लिए तपन से कहकर उन्होंने अपनी राह ली।

इसके दो हफ़्ते बाद। हेडमास्टर उस दिन मधुकुछि गाँव से टहलते हुए घर की ओर लौट रहे थे। राह में एक दृश्य देखकर वे दंग रह गए। उन्होंने देखा – उस उपद्रवी साँड़ की एक टाँग किसी ने तोड़ डाली है। तपन उसे पकड़कर कपड़े की पट्टी बाँध, कुछ जंगली पौधों का रस निचोड़ कर उस पर डाल रहा है। उसकी आँखें भरी

हुई हैं। हेडमास्टर जब वहाँ आकर खड़े हुए तो वह चौंक-सा गया और उसने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। हेडमास्टर ने तपन की आँखों की ओर देखते हुए पूछा, "तपन तू यहाँ क्या कर रहा है?"

"सर, किसी दुष्ट लड़के ने इस बेचारे की एक टाँग तोड़ डाली है। इसे बड़ी तकलीफ़ हो रही है। सर, अनबोला जीव है, इसी कारण आदमी जैसी चीख-पुकार नहीं मचा पाता। अनबोले जीव को इस तरह से तकलीफ़ देना बुरा है, सर !" तपन ने बड़े दुःखी मन से हेडमास्टर से कहा।

"अरे, तूने तो इसी साँड़ को 'बड़ा दुष्ट है' कहकर उस दिन लगाम लगाकर दौड़ाया था ? फिर आज यह तेरे लिए इतना भला कैसे हो गया ?"

"सर, पहले यह दुष्ट था, यह सच है। मगर जिस दिन मैंने लगाम लगाई थी, उसी दिन से यह सुधर गया था। आदमी को मारना तो दूर, आदमी को देखते ही डर के मारे राह से हट जाता था। सर, ऐसी हालत में बेचारे को यों मारना उचित न था। इसे बड़ी तकलीफ़ हो रही है। इसी कारण, मैं इसका घाव धोकर, जंगली पत्तियों का रस निचोड़कर पट्टी बाँध रहा हूँ। पिताजी ने बताया था, ये जंगली पत्तियाँ घाव की अच्छी दवा हैं।" तपन ने जवाब दिया।

साँड़ की तकलीफ़ से उसका मन भी भारी था, आँखें डबडबाई हुई थीं। हेडमास्टर ने क्षण भर कुछ सोचा। इसके बाद तपन के चेहरे की ओर देखते हुए प्यार से उसके गालों को सहलाया। कुछ कहा नहीं।

वहाँ से वे घर की ओर चल पड़े। उनकी आँखें भी भर आई थीं। साँड़ के लिए नहीं, तपन के लिए।

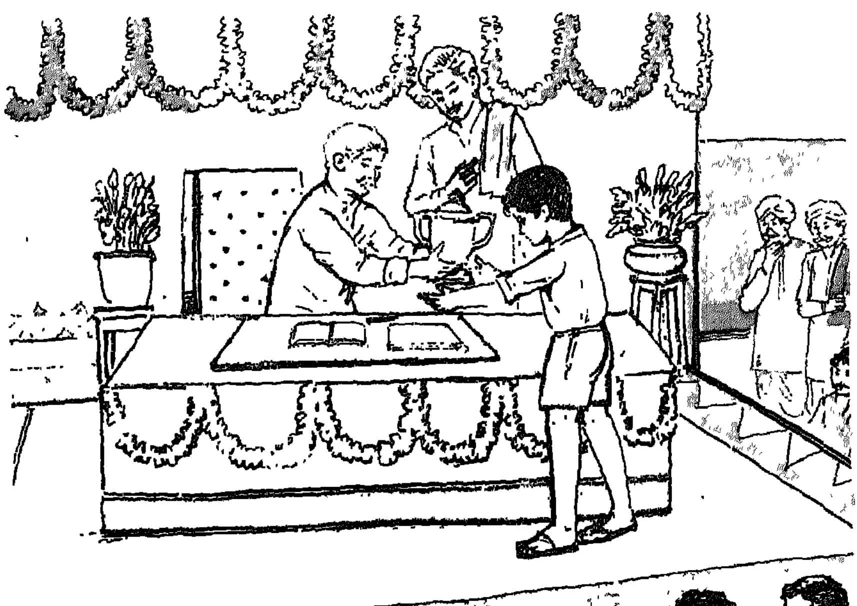
ज्ञानपीठ हाई स्कूल में पुरस्कार वितरण समारोह का दिन था। दो बजे से सभा का आयोजन था। गुवाहाटी के किसी कॉलेज के अध्यक्ष को सभा की अध्यक्षता करने के लिए आमंत्रित किया गया था। हेडमास्टर रवीन बरुआ ने इस बार अन्य पुरस्कारों के अलावा एक विशेष पुरस्कार भी देने की व्यवस्था की थी। घोषणा कर दी गई थी– स्कूल के सबसे उत्तम चरित्रवान लड़के को यह पुरस्कार दिया जाएगा। वह पुरस्कार महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर शास्त्री के जीवन चरित्र की तीन पुस्तकों के रूप में दिया जाने वाला था।

दस बजे स्कूल लगा। इस नए पुरस्कार के बारे में भी सभी कक्षाओं के लड़के आपस में चर्चा कर रहे थे। पाँचवीं कक्षा में नरेन तपन की ओर संकेत करता हुआ व्यंग्य से हँस रहा था। उसने ऊँची आवाज़ में पास बैठे भवेश से कहा, "सुना है, भवेश ! इस बार हमारे स्कूल में उत्तम चरित्र के लिए जिस पुरस्कार की घोषणा की गई है, वह हमारी कक्षा के तपन को मिलने वाला है।" यह सुनते ही कक्षा के सभी लड़के खिलखिलाकर हँस पड़े। शर्म और अपमान से तपन का चेहरा स्याह हो गया। फिर भी वह सिर झुकाए चुप ही रहा।

सभा आरंभ हुई। अध्यक्ष के आसन ग्रहण करने के बाद सचिव ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। फिर लड़के-लड़कियों के नृत्य-गीत, कविता-पाठ आदि कार्यक्रम हुए। उपस्थित सज्जनों की ओर से दो-चार व्यक्तियों

ने भाषण दिए। अध्यक्ष के भाषण के पश्चात् पुरस्कार वितरण आरंभ हुआ। विभिन्न विषयों में कई छात्र-छात्राओं को पुरस्कार मिले। लोगों की तालियों के बीच तथा अध्यक्ष के हाथों पुरस्कार प्राप्त कर सबने गौरव का अनुभव किया। अब नया विशेष पुरस्कार देने की बारी आई। उपस्थित लोगों की आँखों में उत्सुकता छाई हुई थी। वह विद्यार्थी भला है कौन, जो पाँच सौ से अधिक छात्र-छात्राओं में अपने को सबसे चरित्रवान छात्र के रूप में ला सकता है। तभी हेडमास्टर ने अध्यक्ष और उपस्थित सज्जनों को संबोधित करते हुए कहा, "माननीय अध्यक्ष महोदय एवं सज्जन वृंद, अब हमारे स्कूल के सबसे चरित्रवान छात्र को विशेष पुरस्कार देने की बारी है। वह पुरस्कार पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी श्री तपन कुमार हजारिका को देना तय हुआ है।

हेडमास्टर की घोषणा सुनते ही वहाँ उपस्थित स्कूल के इक्कीस



शिक्षकों और पाँच सौ से अधिक छात्रों की ज़बान पर ताला पड़ गया। नरेन और भवेश के चेहरे ऐसे स्याह हो गए मानो किसी ने उनपर बोतल भर काली स्याही उड़ेल दी हो।

हेडमास्टर की ज़बान से अपना नाम सुनकर तपन को पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ था। इसीलिए घोषणा सुनकर भी पुरस्कार लेने के लिए उठकर जाने की हिम्मत उसमें नहीं थी। जब हेडमास्टर ने फिर से 'तपन कुमार हजारिका पाँचवीं कक्षा, कहकर पुकारा तो उसे लगा, जैसे उसके सिर में चक्कर आ गया हो। स्कूल में जो 'सबसे बुरे लड़के' के रूप में चर्चित है, भला उसे ही क्यों आज उत्तम चरित्रवान छात्र का पुरस्कार देने के लिए पुकारा जा रहा है ? किसी तरह उठकर वह अध्यक्ष के पास गया। उन्हें प्रणाम कर उसने हाथ बढ़ाया और पुरस्कार ग्रहण किया।

पुरस्कार प्रदान करने के बाद हेडमास्टर ने वर्णन किया कि तपन ने किस प्रकार उस बुढ़िया भिखारिन की मदद की थी और किस तरह से बेज़बान जीव उस साँड़ की सेवा की थी। फिर खुश होकर उन्होंने अपनी ओर से भी तपन को पाँच रुपया पुरस्कार दिया।

तालियों से सभा गूँज उठी। तपन की आँखों में खुशी के आँसू छलक आए।

अनु. नवारुण वर्मा

प्रश्न

1. तपन के साथी उसे क्यों पसंद करते थे ?
2. किन उत्पातों के कारण हेडमास्टर तपन से क्रुद्ध हुए ?
3. तपन के बारे में हेडमास्टर के विचार क्यों बदल गए ?
4. किन घटनाओं के कारण विशेष पुरस्कार हेतु तपन का चयन किया गया?
5. तपन के चरित्र की किन विशेषताओं ने आपको प्रभावित किया और क्यों?

5. एक फूल

देवकांत को काशी छोड़कर अमृतसर आए कुछ ही अरसा हुआ था। इस बीच उन्होंने शहर का कोना-कोना झाँक लिया।

तब भारत आज़ाद नहीं हुआ था। देवकांत भी अन्य युवकों की तरह आज़ादी की लड़ाई में कूद पड़े थे। वह एक क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए। क्रांतिकारियों की धर-पकड़ शुरू हुई तो देवकांत ने वेश बदला। नकली दाढ़ी-मूँछ लगाई। फिर अपनी सात वर्ष की बेटी गौरी का हाथ पकड़कर अमृतसर आ गए। शहर के मशहूर वकील सोमेश बाबू उनके मित्र और सहपाठी थे। सीधे उन्हीं के यहाँ पहुँचे। सोमेश और उनकी पत्नी माया भाभी ने उनका खूब स्वागत किया। सोमेश बोले, "तुम जब तक चाहो, रहो। यहाँ पुलिस तुम्हारा सुराग नहीं पा सकती। हाँ, थोड़ी दाढ़ी बढ़ा लो, तो अच्छा है।"

देवकांत के मन का बोझ उतर गया। लेकिन इससे भी बड़ी खुशी उन्हें यह देखकर हुई कि गौरी जो गुमसुम और उदास रहती थी, यहाँ आकर खुश है। असल में सोमेश बाबू की भी छोटी बेटी थी, राधा। बड़ी ही चंचल, हँसमुख। गौरी से दो वर्ष बड़ी थी। उसने आते ही गौरी को गप्पों में लगा लिया। दोनों पक्की सहेलियाँ बन गई थीं।

अक्सर देवकांत सुबह-सुबह नाश्ता करके निकलते। रात को देर से लौटते। वकील साहब भी अपने कामों में व्यस्त रहते थे। राधा

और गौरी दिन भर साथ-साथ खेलतीं, बातें करतीं। एक दिन राधा ने बातों-बातों में गौरी से कहा, "गौरी, तुझे पता है ? हमारे शहर में बापू जी आ रहे हैं.. महात्मा गांधी।"

"सचमुच !" गौरी की आँखों में चमक आ गई।

"हाँ, स्कूल में मास्टरजी ने बताया है। परसों आएँगे वह ... रेलगाड़ी से। हज़ारों लोग उनके दर्शन करने जाएँगे।" राधा ने बताया। गौरी बोली, "तब तो मैं भी उनके दर्शन करने जाऊँगी। पिताजी बता रहे थे, वह बच्चों को बहुत प्यार करते हैं।"

"पर वह तो चंदा इकट्ठा करने आ रहे हैं न ! आज़ादी की लड़ाई के लिए। तू भला क्या देगी उन्हें ?" राधा ने पूछा।

गौरी को देवकांत ने कुछ दिन पहले एक इकन्नी दी थी। गौरी ने अभी तक उसे सँभालकर रखा हुआ था। उदास होकर बोली, "मेरे



पास तो यही एक इकन्नी है ..."

राधा हँसी । बोली, "तू तो ऐसे कह रही है, जैसे बापू तेरे हाथ से पैसे ले ही लेंगे। अरी पगली, बड़े-बड़े लोग आएँगे वहाँ। इतनी भीड़ में भला कोई पास जाने देगा तुझे ?"

गौरी बोली, "अपने पिताजी के साथ जाऊँगी मैं। गांधी जी खूब अच्छी तरह जानते हैं उन्हें।"

अब राधा गंभीर हो गई। बोली, "ठहर, मैं अपनी गुल्लक लाती हूँ। कुछ पैसे होंगे उसमें।"

राधा ने अपनी गुल्लक से पैसे निकाले। साढ़े चार आने थे। उसने वे पैसे गौरी को दे दिए। बोली, "इन्हें भी रख ले। ये मेरी ओर से बापू को दे देना।"

गौरी बोली, "कुल साढ़े पाँच आने हो गए। इतने थोड़े पैसे देना क्या अच्छा लगेगा? इससे तो अच्छा है, कुछ फल ले लूँ।"

"वाह, खूब मज़ेदार रहेगा।" राधा ने कहा। फिर दोनों सहेलियाँ देर तक बातें करती रहीं।

उस रात देवकांत लौटे तो गौरी ने कहा, "पिताजी, बापू आ रहे हैं... परसों। आप मुझे उनसे मिलवाने ले चलेंगे न !"

सुनते ही देवकांत का चेहरा सफ़ेद पड़ गया। गांधी जी के आने का उन्हें भी पता चल गया था। पर वह अभी उनसे मिलना नहीं चाहते थे। जानते थे, पुलिस उनके पीछे पड़ी है। कुछ देर चुप रहकर बोले, "अभी नहीं बेटी ! .... कुछ ज़रूरी काम है ......।"

पर बेटी की ज़िद थी। देवकांत इनकार न कर सके। उन्होंने हाँमी भर ली।

जिस दिन महात्मा गांधी को आना था, सुबह से ही प्लेटफ़ार्म पर भीड़ होने लगी थी। सभी उनके दर्शन करना चाहते थे। देवकांत भी एक ओर खड़े थे। गौरी उनके कंधे पर बैठी थी। उसके हाथ में एक छोटी-सी टोकरी थी, जिसमें केले, संतरे और चीकू थे। लोगों का उत्साह फूटा पड़ रहा था। वे महात्मा गांधी की जयजयकार कर रहे थे। 'भारत माता की जय' के नारे लगा रहे थे।

इतने में गाड़ी के आने की सूचना मिली। गाड़ी आकर रुकी, तो लोग उस डिब्बे की ओर दौड़े जिसमें गांधी जी बैठे थे। गांधी जी उस समय पुस्तक पढ़ रहे थे। उनका ध्यान किताब पढ़ने में था। एक हाथ उन्होंने बाहर निकाला हुआ था। लोग जो भी चंदा देते, उसे लेकर वह भीतर रखे थैले में डाल देते, फिर हाथ बाहर निकाल देते।

देखते ही देखते बहुत-सी महिलाओं ने अपने गहने उतारकर दे दिए। सिक्के और नोटों की तो कमी ही न थी। लोगों का उत्साह देखते ही बनता था। न जाने कब गौरी देवकांत के कंधे से उतरी। भीड़ में होती हुई गांधी जी के पास पहुँच गई। बोली, "बापू ... देखिए मैं आपके लिए क्या लाई हूँ ?"

बापू ने किताब एक ओर हटाई। मुसकराकर कहा, "तो लाओ न!"

"ऐसे नहीं बापू ! पहले आप बाहर आइए," गौरी ने इठलाकर कहा।

गांधी जी ने किताब नीचे रखी और हँसते हुए बाहर आ गए।

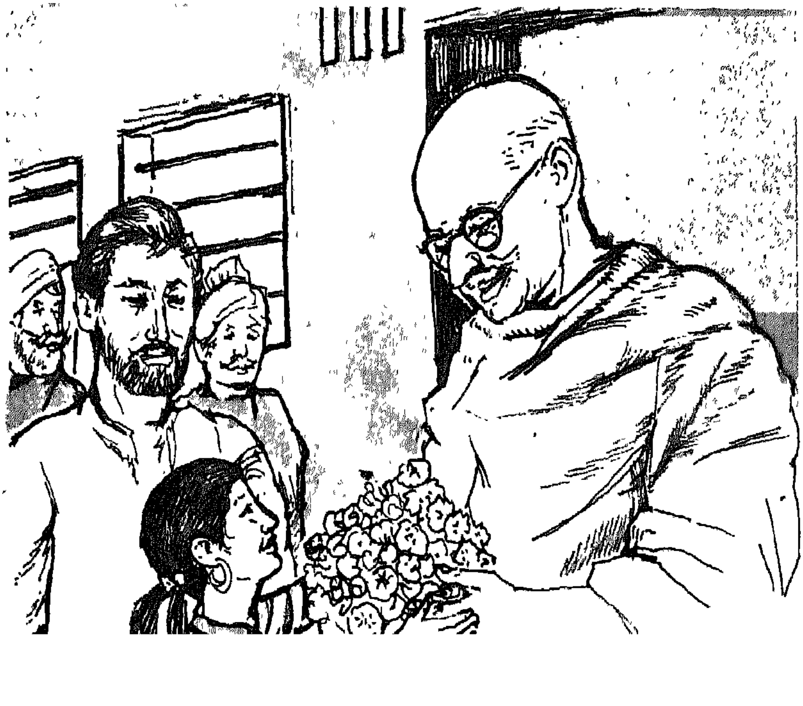
उन्होंने गौरी को पास बुला लिया। उससे बातें करने लगे। आसपास लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई। देवकांत भी तब तक आ गए थे। "बापू ...बापू ... ये मेरे पिता जी हैं।" गौरी ने कहा।

गांधी जी ने देखा, तो देवकांत की शकल उन्हें कुछ-कुछ पहचानी लगी। देवकांत बोले, "आपके आश्रम में आपसे मिल चुका हूँ। आपके कई पत्र भी मेरे पास ..."

"देवकांत !" गांधी जी के होंठों से बरबस निकला। दाढ़ी बढ़ी होने के बावजूद वह देवकांत को पहचान गए थे।

गौरी ने टोकरी बापू की ओर बढ़ा दी। बोली, "बापू, आपको भूख लगी होगी। ये फल आपके लिए लाई हूँ, खा लीजिए न !"

बापू ने टोकरी रख ली। फिर गंभीर होकर कहा, "लेकिन मेरी भी एक शर्त है।"



"वह क्या ?" गौरी अचकचाई।

"वह यह कि बच्चों की चीज़ें मैं मुफ़्त में नहीं लेता। बदले में तुम्हें भी कुछ लेना पड़ेगा।" गांधी जी ने हँसते हुए कहा। फिर वह अंदर गए। टोकरी एक तरफ़ रख दी। रेलगाड़ी के डिब्बे में फूल मालाओं का ढेर था। वह झट दोनों हाथों में कुछ मालाएँ उठाकर लाए। गौरी को पकड़कर कहा, "ये तुम्हारे लिए !"

गौरी का चेहरा खिल उठा। जैसे दुनिया का अकूत खज़ाना मिल गया हो। देवकांत भी मंद-मंद मुसकरा रहे थे। इतने में गाड़ी चल दी।

देवकांत ने कहा, "गौरी, ये फूल अनमोल हैं। सँभालकर रखना।"

धीरे-धीरे भीड़ छँटने लगी। गौरी पिता की उँगली पकड़ कर चल रही थी। अभी वे प्लेटफ़ार्म से उतरे ही थे कि एकाएक पुलिस के पाँच-सात सिपाही देवकांत की ओर बढ़े। बोले, "मि. देवकांत, आपको गिरफ़्तार किया जाता है।"

देवकांत जिस आशंका से घबरा रहे थे, वही हुआ। प्लेटफ़ार्म पर चप्पे-चप्पे पर सरकार के गुप्तचर थे। जब गांधीजी ने देवकांत का नाम लिया, तभी सारा भेद खुल गया। देवकांत फिर कैसे बच पाते?

उधर गौरी हक्की-बक्की खड़ी थी। समझ नहीं पा रही थी कि पुलिस उसके पिता को क्यों पकड़ रही है ? देवकांत ने एक व्यक्ति को वकील साहब के घर का पता बता दिया। बोले, "मेरी बेटी को वहाँ पहुँचा दीजिए। आपका एहसानमंद रहूँगा।" फिर वह चुपचाप

पुलिसवालों की गाड़ी में बैठ गए।

गौरी भीगी आँखों से पिता को जाते देख रही थी। घर आते ही वह फूट-फूटकर रो पड़ी। वकील साहब और राधा ने किसी तरह उसे चुप कराया। सोमेश बाबू देवकांत को जेल से छुड़ाने की कोशिशों में जुट गए।

शहर में जिसको भी पता चला कि बापू ने गौरी को मालाएँ दी हैं, वह दौड़कर गौरी के पास आया। गौरी माला में से एक फूल निकालकर दे देती। इस तरह देते-देते सिर्फ़ एक फूल बचा। गौरी ने वह किसी को नहीं दिया। चुपचाप भीतर जाकर पिताजी का झोला उठाया। उसमें 'वंदेमातरम्' किताब थी जो उसके पिता को बहुत प्रिय थी। वह फूल उस किताब में रख दिया।

अब गौरी गुमसुम, उदास रहने लगी। दिनभर चुपचाप बैठी, कुछ सोचती रहती। कभी-कभी कातर होकर पूछती, "मेरे पिता का क्या



कसूर था ? कब वह जेल से छूटकर आएँगे ?" उसे दिलासा देते-देते खुद सोमेश बाबू की आँखें भीग जातीं। अकेली राधा ही थी जो उसे किसी तरह बहलाए रखती।

आखिर दो वर्ष बाद देवकांत जेल से छूटे। जैसे ही वह घर आए गौरी उनसे लिपट गई। फिर उसे कुछ याद आया। बोली, "ठहरिए .... पिताजी !"

वह दौड़कर भीतर गई। किताब उठा लाई। देवकांत ने देखा, उसमें गेंदे का सूखा फूल रखा हुआ था। उन्होंने गौरी की ओर देखकर पूछा, "यह क्या बेटी ?"

गौरी बोली, "गांधीजी ने फूल मालाएँ दी थीं न ! एक-एक फूल सब ले गए। ... लेकिन एक फूल मैंने बचा लिया, आपके लिए। आपने भी तो भारत माँ की आज़ादी के लिए कष्ट सहे हैं।"

देवकांत ने गौरी को उठाकर गले लगा लिया। उनकी आँखें छलछला उठी थीं।

- *देवेंद्र सत्यार्थी*

प्रश्न

1. देवकांत वेश बदलकर काशी से अमृतसर क्यों आए ?
2. अमृतसर आकर गौरी प्रसन्न क्यों थी ?

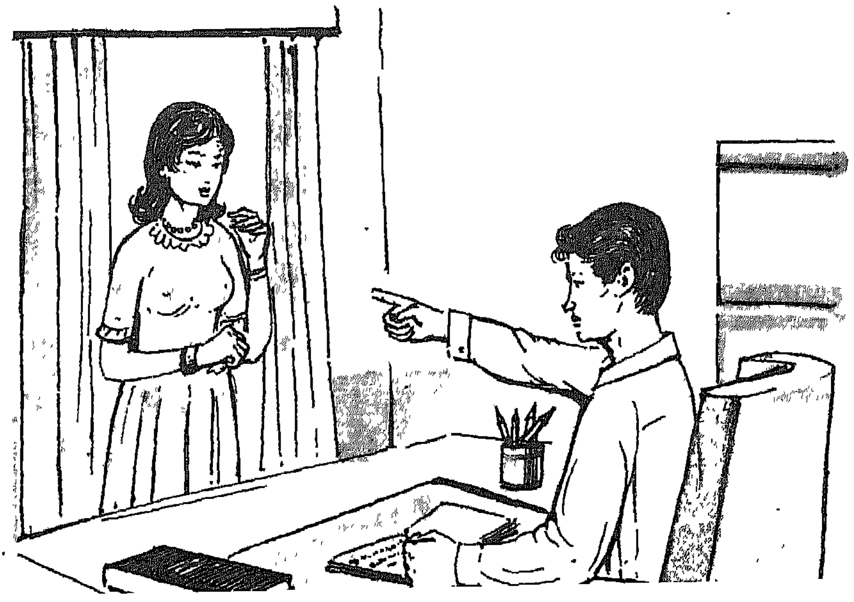
3. गौरी से उपहार लेते समय बापू ने क्या शर्त रखी ?
4. 'गौरी, ये फूल अनमोल हैं। सँभालकर रखना' देवकांत ने ऐसा क्यों कहा ?
5. देवकांत को पुलिस ने क्यों गिरफ़्तार किया ?
6. गौरी ने एक फूल क्यों बचा लिया था ?

6. अन्याय के विरुद्ध

कुछ दिन पहले की बात है मैंने अपने बच्चों की मास्टरनी जूलिया को अपने पढ़ने के कमरे में बुलाया और कहा, "बैठो जूलिया। मैं तुम्हारी तनख्वाह का हिसाब करना चाहता हूँ। मेरे ख्याल से तुम्हें पैसों की ज़रूरत होगी और जितना मैं तुम्हें अब तक जान सका हूँ, मुझे लगता है तुम अपने आप कभी अपने पैसे नहीं माँगोगी। इसलिए मैं खुद ही तुम्हें पैसे देना चाहता हूँ। हाँ, तो तुम्हारी तनख्वाह तीस रूबल महीना तय हुई थी न?..."

"जी नहीं, चालीस रूबल", जूलिया ने दबे स्वर में कहा।

"नहीं भाई, तीस। मैंने डायरी में नोट कर रखा है। मैं बच्चों



की मास्टरनी को हमेशा तीस रूबल महीना ही देता आया हूँ। अच्छा ... तो तुम्हें हमारे यहाँ काम करते हुए दो महीने हुए हैं ... "

"जी नहीं, दो महीने पाँच दिन।"

"क्या कह रही हो ! ठीक दो महीने हुए हैं। भाई, मैंने डायरी में सब लिख रखा है। तो दो महीने के बनते हैं साठ रूबल। लेकिन साठ रूबल तभी बनेंगे जब महीने में एक भी नागा न हुआ हो। तुमने रविवार की छुट्टी मनाई है। उस दिन तुमने काम नहीं किया है। कोल्या को सिर्फ़ घुमाने भर ले गई हो। इसके अलावा तुमने तीन छुट्टियाँ और ली हैं ..."

जूलिया का चेहरा पीला पड़ गया। वह बार-बार अपनी ड्रेस की सिकुड़ने दूर करने लगी। बोली एक शब्द नहीं।

"हाँ, तो नौ इतवार और तीन छुट्टियाँ ... यानी बारह दिन काम नहीं हुआ। मतलब यह कि तुम्हारे बारह रूबल कट गए। उधर कोल्या चार दिन बीमार रहा और तुमने सिर्फ़ वान्या को ही पढ़ाया। पिछले हफ़्ते शायद तीन दिन हमारे दाँतों में दर्द हो रहा था और मेरी बीवी ने तुम्हें दोपहर के बाद छुट्टी दे दी थी। तो बारह सात हुए उन्नीस। उन्नीस नागे। हाँ, तो भाई घटाओ साठ में से उन्नीस। .... कितने बचे ? ... इकतालीस .... इकतालीस रूबल। ठीक है न ?"

जूलिया की आँखों में आँसू छलक आए। उसने धीरे से खाँसा। इसके बाद उसने अपनी नाक साफ़ की। बोली एक शब्द भी नहीं।

"हाँ, याद आया," मैंने डायरी देखते हुए कहा, "पहली जनवरी

को तुमने चाय की प्लेट और प्याली तोड़ी थी। प्याली बहुत कीमती थी। मगर मेरे भाग्य में तो हमेशा नुकसान उठाना ही बदा है। चलो, मैं उसके दो ही रूबल काटूँगा। अब देखो, उस दिन तुमने ध्यान नहीं रखा और तुम्हारी नज़र बचाकर कोल्या पेड़ पर चढ़ गया और वहाँ खरोंच लगकर उसकी जैकेटे फट गई। दस रूबल उसके कट गए। इसी तरह तुम्हारी लापरवाही के कारण नौकरानी ने वान्या के जूते चुरा लिए ... अब देखो भाई तुम्हारा काम बच्चों की देखभाल है। तुम्हें इसी के तो पैसे मिलते हैं। तुम अपने काम में ढील दोगी, तो पैसे कटेंगे या नहीं ? मैं ठीक कह रहा हूँ न ? ... तो जूतों के लिए पाँच रूबल और कट गए। ... और हाँ, दस जनवरी को मैंने तुम्हें दस रूबल दिए थे। ..."

"जी नहीं, आपने मुझे कुछ नहीं ...." जूलिया ने दबी ज़बान से कहना चाहा।

"अरे, मैं क्या झूठ बोल रहा हूँ ? मैं डायरी में हर चीज नोट कर लेता हूँ। तुम्हें यकीन न हो तो दिखाऊँ डायरी ?"

"जी नहीं। आप कह रहे हैं, तो आपने दिए ही होंगे।"

"दिए होंगे नहीं, दिए हैं।" मैंने कठोर स्वर में कहा, "तो ठीक है घटाओ सत्ताईस, इकतालीस में से ... बचे चौदह। ... क्यों हिसाब ठीक है न ?"

उसकी आँखें आँसुओं से भर उठीं। उसके तमाम शरीर पर पसीना छलछला आया। काँपती आवाज़ में वह बोली, "मुझे अभी तक एक

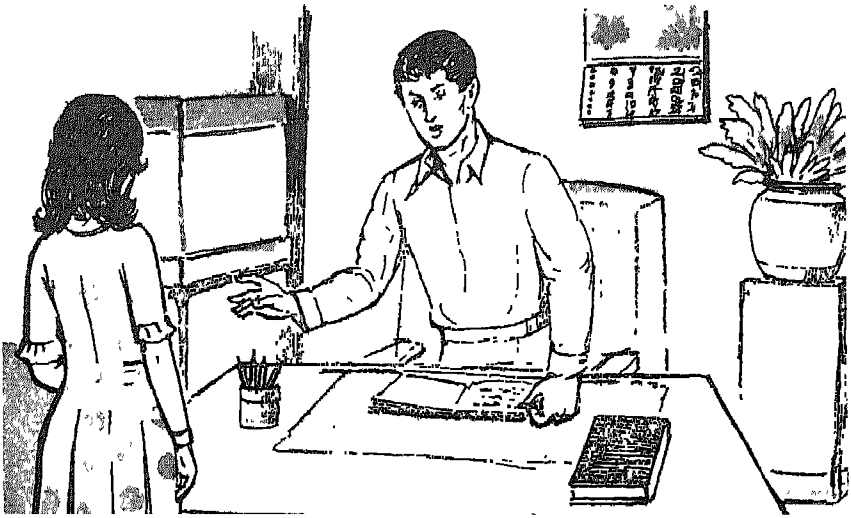
ही बार कुछ पैसे मिले थे और वे भी आपकी पत्नी ने दिए थे। सिर्फ़ तीन रूबल। ज़्यादा नहीं।"

"अच्छा !" मैंने स्वर में आश्चर्य भरकर कहा, "और इतनी बड़ी बात तुम्हारी मालकिन ने मुझे बताई तक नहीं। देखो, हो जाता न अनर्थ। खैर, मैं इसे भी डायरी में नोट कर लेता हूँ। हाँ, तो, चौदह में वे तीन और घटा दो। बचते हैं ग्यारह रूबल। तो लो भाई, ये रही तुम्हारी तनख्वाह ... ये ग्यारह रूबल। देख लो ठीक हैं न ?"

उसने काँपते हाथों से ग्यारह रूबल लिए और अपनी जेब टटोल कर किसी तरह उन्हें उसमें ठूँस लिए और धीमे विनीत स्वर में बोली, "जी, धन्यवाद !"

मैं गुस्से से उबलने लगा। कमरे में चक्कर लगाते हुए मैंने क्रुद्ध स्वर में कहा, "धन्यवाद किस बात का ?"

"आपने मुझे पैसे दिए, इसके लिए धन्यवाद।"



अब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने ऊँचे स्वर में, लगभग चिल्लाते हुए कहा, "तुम मुझे धन्यवाद दे रही हो जबकि तुम अच्छी तरह जानती हो कि मैंने तुम्हें ठग लिया है। तुम्हें धोखा दिया है। तुम्हारे पैसे हड़प लिए हैं। ... इसके बावजूद तुम मुझे धन्यवाद दे रही हो।"

"जी हाँ ! इससे पहले मैंने जहाँ-जहाँ काम किया, उन लोगों ने तो मुझे एक पैसा तक नहीं दिया। आप कुछ तो दे रहे हैं।" उसने मेरे क्रोध पर ठंडे पानी का छींटा-सा मारते हुए कहा।

"उन लोगों ने तुम्हें एक पैसा भी नहीं दिया ! जूलिया, मुझे यह बात सुनकर तनिक भी अचरज नहीं हो रहा है" मैंने कहा, फिर स्वर धीमाकर मैं बोला, "जूलिया, मुझे इस बात के लिए माफ़ कर देना कि मैंने तुम्हारे साथ एक छोटा-सा क्रूर मज़ाक किया। पर मैं तुम्हें सबक सिखाना चाहता था। देखो जूलिया, मैं तुम्हारा एक पैसा भी नहीं मारूँगा। देखो यह तुम्हारे अस्सी रूबल रखे हैं। मैं अभी इन्हें तुम्हें दूँगा। लेकिन उससे पहले मैं तुमसे कुछ पूछना चाहूँगा। जूलिया, क्या जरूरी है कि इनसान भला कहलाए जाने के लिए इतना दब्बू, भीरु और बोदा बन जाए कि उसके साथ जो अन्याय हो रहा है, उसका विरोध तक न करे ? बस खामोश रहे और सारी ज़्यादतियाँ सहता जाए ? नहीं, जूलिया, नहीं। इस तरह खामोश रहने से काम नहीं चलेगा। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए तुम्हें इस कठोर, निर्मम और हृदयहीन संसार से लड़ना होगा। अपने दाँतों और पंजों के साथ लड़ना होगा, पूरी ताकत के साथ। मत भूलो जूलिया कि इस संसार

में दब्बू, भीरु और बोदे लोगों के लिए कोई जगह नहीं है ... कोई जगह नहीं है ..."

अनु. प्रभाकर द्विवेदी

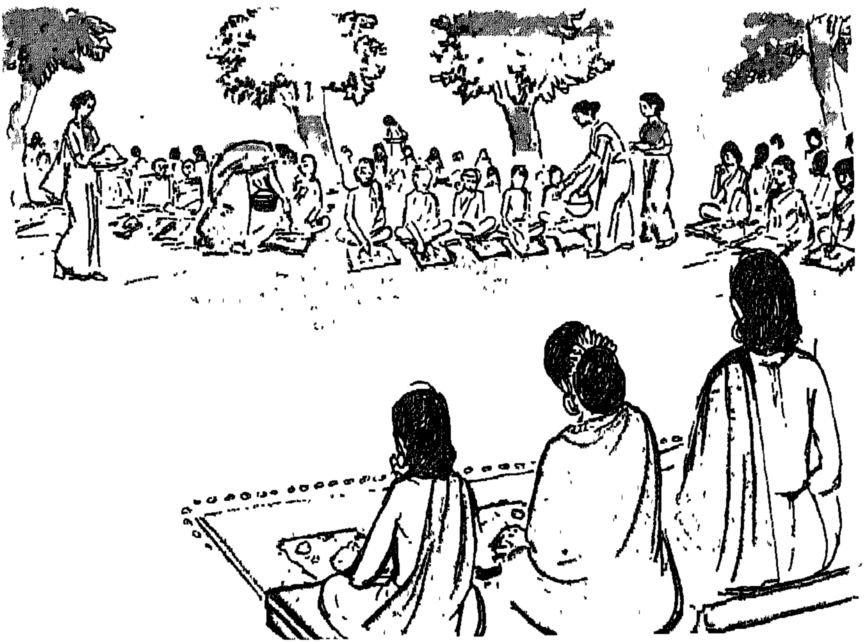
प्रश्न

1. किस हिसाब से लेखक ने जूलिया की तनख्वाह अस्सी रूबल से घटाकर ग्यारह रूबल निश्चित कर दिखाई ?
2. बहुत कम तनख्वाह पाने पर भी जूलिया लेखक का विरोध क्यों नहीं कर सकी ?
3. जूलिया द्वारा धन्यवाद दिए जाने पर लेखक गुस्से में क्यों उबलने लगा ?
4. लेखक जानबूझकर जूलिया के प्रति ऐसा अन्यायपूर्ण व्यवहार क्यों कर रहा था ?
5. अंतोन चेखोव इस कहानी के द्वारा क्या संदेश देना चाहते हैं?

7. दानी कुमणन

दो हज़ार साल पहले तमिलनाडु में मुदिरम् नाम का एक पहाड़ी प्रदेश था। वहाँ कुमणन नाम का राजा शासन करता था। वह बड़ा दानी, प्रजावत्सल और न्यायपालक था। वह विद्वानों, कवियों, कलाकारों का आदर करता था। उसके मन में दीन-दुखी लोगों के प्रति सहानुभूति थी। लोग मदद माँगने उसके पास आया करते थे। वह याचकों की माँग आदरपूर्वक पूरी करता था।

एक बार पड़ोसी राज्य में अकाल पड़ा। वहाँ से कई परिवार कुमणन के पास राहत पाने के लिए आए। सब-के-सब भूखे-प्यासे और थके-माँदे थे। बाल-बच्चे भूख से बिलख रहे थे। बूढ़े लोगों की हालत और



खराब थी। कुमणन ने तुरंत अपने महल में ही बढ़िया भोजन बनवाया। अकाल पीड़ित परिवारों को भी राजपरिवार के साथ बिठाकर भोजन खिलाया, इसी प्रकार बहुत दिनों तक राजमहल में रखकर उनका पालन-पोषण किया।

तमिलनाडु के कोने-कोने से कवि, पंडित, कलाकार और साधु-संत कुमणन के पास आते, आदर-सत्कार पाते और भेंट-उपहार लेकर लौट जाते थे। उस ज़माने के कवि, विद्वान, कलाकार बड़े स्वाभिमानी और सच्चे समाजसेवी थे। वे राजा-प्रजा के हितैषी और मार्गदर्शक भी थे। वे लोग अपने लिए धन-संपत्ति जमा नहीं करते थे। उनका पालन-पोषण राजा की ओर से आदर के साथ हुआ करता था।

राजा कुमणन के ऐसे ही दो हितैषी थे। महापंडित चात्तनार और महाकवि चित्रनार। जब भी उनको किसी चीज़ की ज़रूरत पड़ती, कुमणन के पास चले आते और उनसे माँगकर ले जाते। कुमणन उन दोनों विद्वानों का बड़ा आदर करता था। उन्होंने कुमणन की दान-शीलता और उदारता की प्रशंसा में कई सुंदर गीत गाए हैं। घुमंतू चारण-भाट गायकों ने उन कीर्तिगानों को गाते हुए तमिल प्रदेश के कोने-कोने में कुमणन का यश फैलाया।

एक दिन महाकवि चित्रनार कुमणन से थोड़ा धन माँगने के लिए आए। उस समय कुमणन ज़रूरी राजकाज में लगे हुए थे। इसलिए महाकवि का संदेश पाते ही राजा ने अपने मंत्री के हाथ कुछ धन देकर उनके पास भेज दिया।

महाकवि को यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने मंत्री के दिए धन को स्वीकार नहीं किया। सीधे राजा कुमणन के पास चले आए और बोले, "मेरे प्रिय नरेश !. मैं तुमसे मिलने और तुम्हारे हाथों से उपहार पाने आया हूँ। मुझे मामूली याचक न समझ बैठना। तुम दूसरे के हाथों विपुल संपत्ति भी भेज दो, मैं लूँगा नहीं, तुम स्नेहपूर्वक रत्ती-भर वस्तु भी दे दो, वही मेरे लिए काफी होगी, मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूँगा।"

कुमणन महाकवि की झिड़की सुनकर लज्जित हुआ। उसने अपनी गलती के लिए महाकवि से क्षमा माँगी। उसको इसी महाकवि की एक पुरानी बात याद हो आई। वे एक बार पड़ोसी प्रदेश के राजा वेलियान के महल में गए थे। उस समय वह आराम कर रहा था। महाकवि के आने का समाचार मिला। उनका स्वागत करने वह स्वयं नहीं आया, अपने भाई से बोला, "तुम उनका स्वागत-सत्कार करो। थोड़ा धन देकर उनको विदा करके आओ।"

महाकवि चित्रनार ने देखा कि राजा वेलियान स्वयं न आकर अपने भाई को भेज रहा है। वे तुरंत वहाँ से उठकर चले आए और कुमणन के पास गए। कुमणन ने उनका आदर के साथ स्वागत किया। महाकवि ने कुमणन की प्रशंसा में सुंदर गीत गाए। कुमणन ने बहुत हर्षित होकर उनको एक सजा-धजा हाथी और धन-राशि देकर विदा किया।

महाकवि चित्रनार उस हाथी को लेकर वेलियान के महल में गए और उनसे कहा, "मेरे राजा ! यह लो मेरी ओर से यह उपहार।

यदि तुम्हारे पास मेरा सम्मान करने के लिए फ़ुरसत नहीं है, तो क्या हुआ ? मेरे पास तुम-जैसे राजाओं का आदर करने के लिए समय है, सामर्थ्य भी है।"

राजा वेलियान लज्जित हुआ। वह महाकवि के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगने लगा।

कुमणन को यह घटना याद आई। उसने निश्चय कर लिया कि आगे से ऐसी गलती मुझसे नहीं होनी चाहिए।

कुमणन के दूसरे मित्र थे महापंडित चात्तनार। वे भी समय-समय पर आकर राजा से भेंट-उपहार लिया करते थे। वे उदार स्वभाव के थे, उनको जो कुछ मिलता, उसे अपने गरीब रिश्तेदारों के साथ बाँट लेते थे। थोड़े समय के बाद महापंडित चात्तनार के पास कुछ नहीं बचा। अपना परिवार चलाना भी मुश्किल हो गया। भुखमरी की नौबत आ गई। तब उन्हें दानी राजा कुमणन की याद आई। वे उनसे मिलने मुदिरम् नगर में आए, किंतु वहाँ स्थिति एकदम बदली हुई थी।

कुमणन का एक सौतेला छोटा भाई था – इलंकुमणन। वह सत्तालोभी और चालाक आदमी था। उसने विद्रोह करके राजगद्दी हथिया ली और अपने बड़े भाई को राज्य से ही अलग कर दिया।

शांतिप्रिय कुमणन अचानक हुए विद्रोह को दबा नहीं सका। उस समय की लड़ाई में वह हार गया। राजपाट छोड़कर उसी पहाड़ी प्रदेश के जंगल में कुटिया बनाकर अपने परिवार के साथ रहने लगा। फिर भी उसी का नाम और यश उस प्रांत में ऊँचा था।

नए शासक इलंकुमणन ने सोचा, "बड़े भाई के रहते मुझे कोई नहीं मानेगा और मेरी शासन-सत्ता भी स्थिर नहीं रह सकती। इसलिए उनको इस दुनिया से ही अलग कर देना चाहिए ....।"

बस, दूसरे ही दिन इलंकुमणन ने राज्यभर में ढिंढोरा पिटवाया कि जो व्यक्ति मेरे पराजित भाई का सिर काटकर लाएगा, उसे एक हज़ार स्वर्ण मुद्राएँ भेंट की जाएँगी।

इस घोषणा को सुनते ही लोगों में खलबली मच गई। सभी प्रजाजन नए शासक इलंकुमणन से घृणा करने लगे और उसकी निंदा भी। इस नीचतापूर्ण घोषणा की सभी ने अवहेलना कर दी।

महापंडित चात्तनार अपने दानी मित्र कुमणन की दुर्दशा जानकर बहुत दुःखी हुए। वे उसको खोजते हुए जंगल में गए। कुमणन से मुलाकात हुई। दोनों स्नेह से गले मिलकर रो पड़े। भाग्य का यह कैसा क्रूर खेल है। लाचारी का एहसास दोनों को अधिक सताने लगा।

कुमणन भाँप गया कि हितैशी मित्र चात्तनार तंग हालत में हैं और मुझसे मदद लेने आए हैं। उसको अपनी दुर्दशा पर बहुत दुःख हुआ। वह सोचने लगा, "मैं कितना अभागा हूँ। घर आए आदरणीय अतिथि का सत्कार करने और इनकी मदद करने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। ऐसे निकृष्ट जीवन से लाभ ही क्या है ?"

कुमणन ने निश्चय किया कि वे मित्र महापंडित को खाली हाथ नहीं जाने देंगे। उसने चात्तनार से निवेदन किया, "मेरे आदरणीय बंधु, आप मेरी यह तलवार लीजिए। इससे मेरा सिर काटकर ले जाइए

और मेरे भाई को सौंप दीजिए। वह आपको एक हज़ार स्वर्ण मुद्राएँ भेंट करेगा। उस धनराशि से आप पहले की तरह अपने परिवार तथा रिश्तेदारों का पालन-पोषण करें।

दानी कुमणन की यह बात सुनते ही चात्तनार सिहर उठे, बिलख-बिलखकर रो पड़े। वे अपनी तंगी और तकलीफ़ भूल गए। वे सोचने लगे, "यह कुमणन कितना महान् दानवीर है। ऐसे त्यागी पुरुष की यह दुर्दशा नहीं होनी चाहिए। इस विपत्ति से इसको उबारना मेरा कर्तव्य है। अब मैं यही करूँगा ...।"

चात्तनार ने कुमणन से तलवार ली और कहा, "मेरे प्रिय मित्र ! तुम मेरे लौट आने तक सब्र करो। मैं वापस आकर तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।"

चात्तनार जंगल से लौटकर नगर के प्रसिद्ध शिल्पी के यहाँ पहुँचे। उन्होंने उस शिल्पी से कुमणन का कटा हुआ सिर जैसा ही एक सिर



मोम का बनवाया। वे उस सिर को कपड़े से ढककर राजमहल में ले गए।

इलंकुमणन राजगद्दी पर बैठा हुआ था। सामने गणमान्य दरबारी लोग थे। महापंडित चात्तनार ने कटे हुए सिर को राजा के सामने रखा और कहा, "नए शासक ! यह लो, तुम्हारे ऐलान की भेंट। अब तो तुम्हारा दिल ठंडा हुआ न ? लेकिन, हाँ यह न भूलो कि इस अत्याचार से तुम्हारा जीवन और शासन संकट से मुक्त हो गया।"

खून से सना और कटा हुआ सिर देखते ही इलंकुमणन भौंचक रह गया। उसको विश्वास हो चुका था कि पूरे प्रदेश में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं मिलेगा जो धन के लालच में कुमणन की हत्या करने को तैयार हो जाए। ऐसी हालत में इस अनहोनी घटना से वह विचलित हो उठा। उसकी मानवता जाग उठी। शोक और पश्चाताप की आग



में वह झुलसने लगा। लज्जा के कारण उसका सिर झुक गया। उसने दबे स्वर में कहा, "महापंडित ! आपने यह क्या कर दिया ? मैं सत्ता के मोह में पड़कर भाईचारा, सद्भाव और शील सब भूल बैठा। आप तो बड़े विद्वान हैं और मेरे बड़े भाई के मित्र भी हैं। आपके हाथों यह पाप कैसे हुआ ?"

चात्तनार इलंकुमणन के हृदय-परिवर्तन से आश्वस्त हुए। वे शांत भाव से बोले, "युवराज ! तुमसे इसी हृदय-परिवर्तन की आशा मुझे थी। इसीलिए मैंने यह उपाय किया है। तुम्हारे बड़े भाई दानी कुमणन जंगल में भले-चंगे हैं। यह उनका नकली सिर है जो मोम का बना है। अब तो तुम्हें अपने किए पाप का प्रायश्चित करना है, करोगे ?"

इलंकुमणन ने हाथ जोड़कर चात्तनार से क्षमा माँगी और प्रार्थना की, "महापंडित जी ! आज्ञा दीजिए। मैं अपने प्राण तक देने को तैयार हूँ।"

चात्तनार ने उसे समझाया, "युवराज ! तुम बड़े भाई को आदर के साथ वापस बुला लाओ। उनको यह राजगद्दी सौंप दो। इस प्रांत के पुराने राजा लोग बड़े दानी, नीतिपालक और विद्याप्रेमी थे। तुम्हारे पूर्वजों ने अच्छे-भले काम कर बड़ी ख्याति पाई है। युवराज ! तुम भी अपने पूर्वजों की तरह अच्छे काम करके कीर्ति पाओ।"

युवराज इलंकुमणन ने चात्तनार की सलाह मानी। वह बड़े भाई को आदर के साथ ले आया और उनको राजगद्दी सौंपकर स्वयं युवराज बना। महापंडित चात्तनार अपने प्रयास की सफलता पर फूले न समाए।

वे दोनों भाइयों से भेंट-उपहार पाकर आनंद के साथ घर लौटे।

- र. शौरिराजंन

प्रश्न

1. 'कुमणन बड़ा दानशील और ज़रूरतमंदों की सहायता करने वाला राजा था।' उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए।
2. महाकवि चित्रनार के स्वाभिमान को दर्शाने वाली किसी एक घटना का उल्लेख कीजिए।
3. राजा कुमणन से चित्रनार के स्वागत में क्या गलती हुई और उन्होंने उसे कैसे सुधारा ?
4. इलंकुमणन ने अपने बड़े भाई कुमणन के साथ क्या अन्याय किया ?
5. 'बड़े भाई के रहते हुए मुझे कोई नहीं मानेगा और मेरी राजसत्ता भी स्थिर नहीं रह सकती।' इलंकुमणन ने ऐसा क्यों सोचा ?
6. महापंडित चात्तनार इलंकुमणन का हृदय-परिवर्तन करने में किस प्रकार सफल हुए ?

8. शापमुक्ति

एक दिन ऐसा हुआ कि मैं अपनी बूढ़ी दादी की आँखों का इलाज कराने दिल्ली के एक बड़े प्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सक डॉ. प्रभात के पास गया। लगभग अंधी हो चुकी दादी को सहारा दिए जब मैं डॉ. प्रभात के कमरे में पहुँचा तो उन्होंने मुसकराते हुए दादी का स्वागत किया, "आओ, आओ, दादी अम्मा ! कहाँ, क्या तकलीफ़ है ?

दादी ने आवाज़ से ही डॉक्टर की उम्र का अनुमान लगा कर कहा, "कोई तकलीफ़ नहीं, बेटा। बस बुढ़ापे की मारी हूँ। बुढ़ापे में नज़र कमज़ोर हो ही जाती है।"

"पर मैं तो आँखों का डॉक्टर हूँ, दादी अम्मा ! बुढ़ापे का इलाज मेरे पास कहाँ ?" डॉ. प्रभात ने हँसते हुए कहा।

मेरी दादी भी कम विनोदी स्वभाव की नहीं। कहने लगीं, "कोई बात नहीं, बेटा ! तुम आँखों का इलाज ही कर दो, बुढ़ापे का इलाज तो भगवान के पास भी नहीं है।"

यह सुनकर डॉ. प्रभात हँस पड़े और दादी से बात करते हुए उनकी आँखों की जाँच करने लगे। उन्होंने विस्तार से, कई उपकरणों और यंत्रों की सहायता से दादी की आँखों की जाँच की। बीच-बीच में बातचीत और हँसी-मज़ाक भी करते जाते थे।

मैं चुपचाप बैठा डॉ. प्रभात की ओर देख रहा था। पहले तो

मुझे उनकी हँसी ही कुछ जानी-पहचानी लगी थी, फिर ध्यान से देखने पर उनका चेहरा भी कुछ परिचित-सा मालूम हुआ। लेकिन याद नहीं आ रहा था कि मैंने इन्हें पहले कहाँ देखा है। आखिर जब उन्होंने दादी की आँखों की पूरी जाँच कर ली, तो मैंने पूछ ही लिया, "आप कहाँ के रहने वाले हैं, डॉक्टर साहब?"

"इलाहाबाद का हूँ।" क्यों ?

"अरे, हम भी इलाहाबाद के ही हैं।" दादी मुझसे पहले ही बोल उठीं।

"अच्छा ? बड़ी खुशी हुई।" डॉ. प्रभात ने सचमुच खुश होकर पूछा, "इलाहाबाद में कहाँ रहते हैं आप लोग ?"

दादी ने ज्योंही हमारे इलाहाबाद वाले घर का पता-ठिकाना बताया, डॉ. प्रभात ने मेरी तरफ़ देखा और अचरज भरी प्रसन्नता से बोले, "अरे, तुम बब्बू तो नहीं हो?"

"और तुम मंटू ?" अचानक मेरे मुँह से निकल गया, "तुम ... आप मेरे बचपन के मित्र मंटू हैं न ?"

"हाँ भई, मैं मंटू ही हूँ। वाह, यार तुम खूब मिले ! तुम तो शायद जब दूसरी या तीसरी कक्षा में पढ़ते थे, तभी अपने परिवार के साथ दिल्ली चले आए थे। है न ? वाह, मुझे तो स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि जीवन में फिर कभी तुमसे भेंट होगी। सच, बड़ी खुशी हुई तुमसे मिलकर।"

"मुझे भी।" मैंने अत्यंत प्रसन्न होकर कहा।

तभी डॉ. प्रभात ने दादी का चेहरा ध्यान से देखा और अचानक उनकी मुसकान लुप्त हो गई। चेहरा किसी दुखदाई स्मृति में काला-सा हो आया। दादी की अत्यधिक कमज़ोर आँखों को डॉक्टर के चेहरे का यह भाव-परिवर्तन नज़र नहीं आया। वे प्रसन्न होकर पूछने लगीं, "अच्छा, तो तुम दोनों बचपन में साथ-साथ खेले हो ? यह तो बड़ा अच्छा संयोग रहा। तुम तो अपने ही हुए, डॉक्टर बेटा। हाँ, तुमने अपना क्या नाम बताया? मंटू ? इलाहाबाद में हमारे पड़ोस में एक वकील रहते थे, उनके लड़के का नाम भी कुछ ऐसा ही था। बड़ा बदमाश लड़का था ..."

डॉ. प्रभात ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे सहसा बहुत गंभीर हो गए। दादी के लिए दवाई का पर्चा लिखते हुए उन्होंने कहा, "ये बातें फिर कभी होंगी, दादी अम्मा ! बाहर और भी कई रोगी इंतज़ार कर रहे हैं। मैं तुम्हारी दवाई लिख रहा हूँ। बाज़ार से मँगवा लेना और दिन में तीन बार आँखों में डालती रहना। फिर अगले सप्ताह आज के ही दिन आ जाना। तुम्हारी आँखों का ऑपरेशन करना होगा। घबराना मत, ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारी आँखें अच्छी हो जाएँगी।"

बाहर आते ही दादी ने मुझसे पूछा, "यह उसी वकील का बेटा मंटुआ था न ?"

"हाँ, दादी ! बचपन में मेरे साथ पढ़ता था।"

"बस, तो अब इसके पास दुबारा आने की ज़रूरत नहीं। मैं इस दुष्ट के हाथों अपनी आँखें नहीं फुड़वाऊँगी।"

"कैसी बातें करती हो, दादी ! यह तो बहुत माना हुआ डॉक्टर है और अब तो अपनी जान-पहचान का भी निकल आया। उसे दुष्ट क्यों कह रही हो ?"

"तू भूल गया इसने वहाँ इलाहाबाद में क्या किया था ?"

"क्या किया था ?"

"अरे, तुझे याद नहीं, इसने मुहल्ले की कुतिया के तीन पिल्लों की आँखें आक के पौधे का दूध डालकर फोड़ दी थीं ? तूने ही तो यह बात हम लोगों को बताई थी। उनमें से एक अंधा पिल्ला तूने ज़िद करके पाला था, यह भी तुझे याद नहीं ?"

मैं सचमुच ही सब कुछ भूला हुआ था, लेकिन दादी के याद दिलाने पर एक धुँधली-सी स्मृति उभरी और ज्योंही मैंने दिमाग पर थोड़ा ज़ोर दिया, बचपन की वह दुखद स्मृति सहसा कल की-सी घटना के रूप में स्पष्ट होकर मेरी आँखों के आगे आ गई।

इलाहाबाद में हमारे पड़ोसी वकील साहब की कोठी के पीछे एक बहुत बड़ा बाग और घास का मैदान था। मैं मंटू के साथ अक्सर वहाँ खेला करता था। बाग की मेंड़ के पास आक के बहुत से पौधे उगे हुए थे। एक दिन हम खेल-खेल में आक के पत्ते तोड़ने लगे। उधर से गुज़रते हुए हमारे स्कूल के अध्यापक ने हमें देख लिया। उन्होंने हमें डाँट लगाई और बताया कि आक के पत्ते कभी नहीं तोड़ने चाहिए, क्योंकि उन्हें तोड़ने से जो गाढ़ा-गाढ़ा सफ़ेद दूध-सा निकलता है, यदि आँखों में चला जाए तो आदमी अंधा हो जाता है।

यह जानकारी हम लोगों के लिए एकदम नई और विस्मयकारी थी। वास्तव में ऐसा होता है या नहीं, यह देखने के लिए मंटू ने एक प्रयोग कर डाला था। ठंड के दिन थे और मुहल्ले में आवारा घूमने वाली एक कुतिया ने वकील साहब की कोठी के पीछे पड़ी सूखी टहनियों के ढेर के नीचे तीन पिल्ले दिए थे। पिल्ले बड़े सुंदर थे। मैं और मंटू उनसे खेला करते थे। आक के दूध के भयानक असर की जानकारी मिलने के अगले दिन जब मैं स्कूल से आकर खाना खाने के बाद मंटू के साथ खेलने गया तो मैंने देखा, मंटू आक के पौधों के पास बैठा है और उसके घुटनों में दबा एक पिल्ला कें-कें कर रहा है। दो पिल्ले पास ही कूँ-कूँ करते इधर-उधर भटक रहे थे। नज़दीक जाकर मैंने देखा तो हैरान रह गया। मंटू आक के पत्ते तोड़-तोड़ कर उनका दूध पिल्ले की आँखों में डाल रहा था।



"यह तूने क्या किया, बेवकूफ़ ! पिल्ला अंधा हो जाएगा।" मैंने चिल्ला कर कहा।

मंटू ने उस पिल्ले को नीचे रख दिया और बोला, "मैंने उन दोनों की आँखों में भी आक का दूध भर दिया है। अब देखेंगे, ये तीनों अंधे होते हैं या नहीं।"

उस गाढ़े चिपचिपे दूध से तीनों पिल्लों की आँखें बंद हो गईं। कुछ दिनों बाद आँखें तो शायद खुल गई थीं, लेकिन वे अंधे हो गए थे।

मंटू के इस कुकृत्य की जानकारी केवल मुझे ही थी। मैंने उसे उन प्यारे-प्यारे पिल्लों को अंधा बना देने के लिए बहुत बुरा-भला कहा था और वकील साहब से शिकायत करने की धमकी भी दी थी। लेकिन मंटू को एहसास हो गया था कि उसने अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए इस प्रयोग के रूप में एक बड़ा पाप कर डाला है। उसने गिड़गिड़ा कर मुझसे कहा था कि यह बात मैं किसी को न बताऊँ। मैं शायद बताता भी नहीं, लेकिन जब उन तीन पिल्लों में से दो, दिन-रात कूँ-कूँ करते, इधर से उधर भटकते मर गए, मुझे बहुत दुःख हुआ और उस दिन मैं बहुत रोया।

दादी, माँ और परिवार के अन्य सभी लोग मुझसे बार-बार पूछने लगे कि मैं क्यों रो रहा हूँ ? पहले मैंने बात छिपा कर अपने मित्र मंटू को बचाने की कोशिश की, लेकिन फिर मुझे तीसरे पिल्ले का ध्यान आ गया, जो अभी जीवित था और उसकी जान बचाना मुझे

मंटू को पिटाई से बचाने से ज़्यादा ज़रूरी लग रहा था। इसलिए मैंने रोते-रोते सारी बात बता दी और उस पिल्ले की आँखों का इलाज करा देने की ज़िद पकड़ ली। सब लोगों ने मंटू को बुरा-भला कहा। वकील साहब ने उसकी पिटाई भी की। मुझे भी बहुत कुछ सुनना पड़ा, क्योंकि मैंने भी सब कुछ जानते हुए भी बात को तब तक छिपाए रखा, जब तक दो पिल्ले मर नहीं गए।

आखिर तीसरे पिल्ले को बचाने के प्रयास किए गए। मैंने ज़िद करके उसे पाल लिया। पिताजी ने उसकी आँखों का इलाज भी कराया, लेकिन वह अंधा ही रहा। माँ और दादी उसकी बड़ी सेवा करती थीं। मैं भी उसका बहुत ध्यान रखता था। उस समय तो उसकी जान बच गई, लेकिन जब वह बड़ा हो गया, एक दिन घर से बाहर निकल गया और सड़क पर किसी वाहन से कुचल कर मर गया।

उस घटना को याद कर मैं हैरान रह गया। बचपन में तीन पिल्लों की आँखें फोड़ देने वाला मंटू आज इतना बड़ा नेत्र-चिकित्सक ! इससे भी ज़्यादा हैरानी की बात यह थी कि लगभग पैंतीस साल पहले की वह घटना, जिसे मैं भूल चुका था, दादी को अभी तक याद थी।

निश्चय ही वह घटना प्रभात को भी याद होगी। तभी तो वह हम लोगों का परिचय पाते ही अचानक चुप, गंभीर और उदास हो गए थे।

"लेकिन दादी, बचपन की उस बात को लेकर अब तो डॉ. प्रभात को बुरा-भला कहना ठीक नहीं।" मैंने दादी को समझाने की कोशिश

की, "अब वे मंटू नहीं, देश के माने हुए नेत्र-चिकित्सक हैं। दूर-दूर से लोग उनके पास अपनी आँखों का इलाज कराने आते हैं। अब तक तो वे हज़ारों लोगों को उनकी खोई हुई नेत्र-ज्योति लौटा चुके होंगे। क्या इतनी बड़ी सेवा से उनका वह बचपन का अबोध अवस्था में किया हुआ पाप अब तक धुल नहीं गया होगा ?"

"कुछ भी हो, मैं उससे अपनी आँखों का इलाज नहीं कराऊँगी।" दादी ने निश्चय के स्वर में कहा।

दादी का स्वभाव बिलकुल बच्चों का-सा है। हठ पकड़ लेती हैं तो किसी के मनाए नहीं मानतीं। मैंने उन्हें बहुत समझाने की कोशिश की, लेकिन वे डॉ. प्रभात से इलाज कराने को तैयार न हुईं। आँखों में डालने की जो दवाई डॉ. प्रभात ने लिखकर दी थी, वह भी नहीं खरीदने दी। परिवार के सब लोगों ने उन्हें समझाया, लेकिन वे टस -से-मस नहीं हुईं।

आखिर शाम को मैंने डॉ. प्रभात को टेलीफ़ोन किया और दादी की ज़िद के बारे में बताया। डॉ. प्रभात ने गंभीर होकर सब कुछ सुना और बोले, "तुम अपने घर का पता बताओ, मैं स्वयं आकर दादी अम्मा को समझाऊँगा।"

लगभग एक घंटे बाद डॉ. प्रभात हमारे घर में थे और दादी से कह रहे थे, "दादी अम्मा ! मैंने बचपन में जो पाप किया था, उसे मैं आज तक नहीं भूला हूँ और मैं उस शाप को भी नहीं भूला हूँ, जो आपने मुझे दिया था। जब तक आप इलाहाबाद में रहीं, मुझे देखते

ही कहने लगती थीं – अरे, कंबख्त मंटुआ, तूने मासूम पिल्लों की आँखें फोड़ी हैं, तेरी आँखें भी किसी दिन इसी तरह फूटेंगी। आप के इस शाप से मुझे अपने पाप का बोध हुआ और मैंने फ़ैसला कर लिया कि मुझे जीवन में नेत्र-चिकित्सक ही बनना है। मेरी आँखें तो आप के शाप के कारण कभी-न-कभी फूटेंगी ही, पर उससे पहले मैं बहुत-सी आँखों को रोशनी दे जाऊँगा। उन बहुत-सी आँखों में दो आँखें आपकी भी होंगी, दादी अम्मा।"

डॉ. प्रभात की बातों में न जाने कैसा जादू था कि दादी की ही नहीं, हम सबकी आँखें भर आईं। दादी तो इतनी भाव-विह्वल हो उठीं की उन्होने डॉ. प्रभात को पास बुला कर हृदय से लगा लिया। उनके सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, "जीते रहो, मेरे लाल ! तुम्हारी आँखों की ज्योति हमेशा बनी रहे।"



इसके बाद दादी ने मुझे कहा, "अरे बबुआ, तेरा बालसखा आया है, इसकी खातिरदारी नहीं करेगा ? जा,

इसके लिए अच्छी-सी मिठाई लेकर आ .... और सुन, इसने मेरी आँखों के लिए जो दवाई लिखी थी न, वह भी खरीद लाना।"

- रमेश उपाध्याय

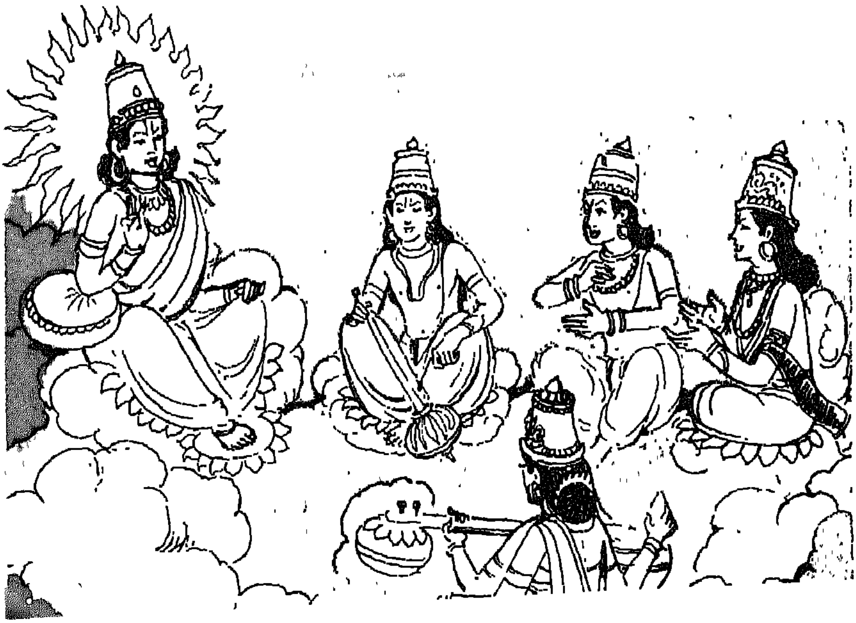
प्रश्न

1. बचपन में बिछुड़े बब्बू और मंटू की मुलाकात किस प्रकार हुई ?
2. दादी का चेहरा ध्यान से देखने पर डॉ. प्रभात की मुसकान क्यों लुप्त हो गई ?
3. दादी ने डॉ. प्रभात से आँखों का इलाज करवाना क्यों मना कर दिया?
4. बब्बू ने मंटू के पाप का भेद क्यों खोल दिया ?
5. मंटू ने बचपन में हुई भूल का प्रायश्चित किस प्रकार किया ?
6. इस कहानी का शीर्षक 'शापमुक्ति' क्यों रखा गया ?

9. देवताओं की सभा में लेखक

एक बार ईश्वर बहुत उदास था। उसने विष्णु को बुलाया और कहने लगा, "एक दिन मैंने ब्रह्मा को सृष्टि रचने का आदेश दिया था, उसने आदेश का पालन करते हुए सृष्टि की रचना कर दी, परंतु उसके पालन-पोषण का भार तुम्हें सौंपा था। विष्णु ! तनिक देखो, बीसवीं सदी के लोगों की क्या दशा हो गई है।"

विष्णु ने अपने चारों हाथों में पकड़े हुए – शंख, सुदर्शन चक्र, गदा और कमल ईश्वर के चरणों में रख दिए तथा चारों हाथ जोड़ते हुए कहने लगे, "मेरे ईश्वर, सृष्टि के लोगों को जब-जब मेरी आवश्यकता अनुभव हुई, उन्होंने मुझे स्मरण किया, मैं अविलंब उनके पास पहुँचा। मैंने मनुष्यों के अभावों की पूर्ति के लिए एक नहीं, अपितु बारह अवतार



लिए, परंतु अब धरती के लोगों ने मुझे स्मरण करना छोड़ दिया है। आप ही बताएँ, मैं क्या करूँ ?"

ईश्वर ने कहा, "अच्छा, सभी देवी-देवताओं को बुलाओ। उनसे भी पूछ लिया जाए कि हमारे ही रचे हुए जीव क्या सचमुच हमें भूल चुके हैं ?" सभी देवी-देवता ईश्वर के दरबार में उपस्थित हो गए।

सबसे प्रथम वरुण देवता उठे और कहने लगे, "ईश्वर, आपकी चिंता उचित है। धरती और अंबर के मध्य मेरा एक सहस्र द्वारों वाला घर है। मैंने हर द्वार से धरती की अवस्था की झाँकी देखी है। सचमुच लोग हमें विस्मृत कर चुके हैं। अंतरिक्ष की शक्तियों के रहस्य मुझसे अधिक कोई नहीं जान सकता। मेरा साथी सूर्य देवता दिन के समय मेरे कार्यों में हाथ बँटाता है, परंतु रात को मैं अकेला ही धरती और अंबर पर दृष्टि रखता हूँ। धरती को जल की आवश्यकता थी, मैंने अंबर से जल लेकर नदियों के रूप में उसे प्रदान किया। जल लोगों की रक्षा करे, उन्हें प्रकोप से सुरक्षित रखे, इसलिए वे मेरी उपासना करते थे, परंतु अब भले ही घर-बार, खेत-खलिहान बह जाए, वे मुझे कभी भी स्मरण नहीं करते।"

इसके पश्चात् वायुदेव उठे और कहने लगे, "मेरी साँस लोगों को जीवनदान देती है, परंतु वे अपनी किसी भी साँस के साथ मेरा स्मरण नहीं करते।" इसी प्रकार अग्निदेवता ने कहा, "ईश्वर तुम्हारी सृष्टि की रक्षा के लिए मैं आकाश में सूर्य के रूप में जन्म लेता हूँ, बादलों में विद्युत के रूप में, धरती पर अग्नि के रूप में, परंतु जिन लोगों

के जीवन के लिए इतना कुछ करता हूँ, वें मुझे पूर्णतया भुला चुके हैं।"

ईश्वर की उदासी और भी गहरी हो गई तो देवताओं ने परामर्श दिया, "क्यों न धरती से कुछ लोगों को बुलाकर पूछा जाए कि वे अपने कष्टों की निवृत्ति के लिए हमें स्मरण क्यों नहीं करते ?"

"तुम लोग ही बताओ कि किस-किस को बुलाया जाए," ईश्वर ने पूछा। यह सुनते ही सभी देवी-देवता विचारमग्न हो गए। फिर कहने लगे, "यदि इस समय के राजनीतिज्ञ लोगों को बुलाया जाए तो वे सत्य नहीं बतलाएँगे, क्योंकि राजनीति में रहकर उनको सत्य बोलने का अभ्यास ही नहीं रहा और यदि साधारण लोगों में से किसी को बुलाया जाए तो वह किसी भी दलील के साथ बात नहीं कर पाएँगे क्योंकि हड्डियों को चूर कर देने वाले कड़े परिश्रम के कारण उनके सोचने की शक्ति ही समाप्त हो चुकी है।"

बड़ी देर तक विचार-विनिमय करने के पश्चात् सभी देवी-देवताओं ने देवी सरस्वती से कहा, "तुम्हारी उपासना करने वाले निश्चय ही सच्चे एवं विवेकी होंगे। क्यों न धरती से किसी लेखक को बुलाकर संसार के इस रहस्य के बारे में पूछताछ की जाएं।" सरस्वती ने स्वीकृति में सिर हिलाया, परंतु कहने लगीं, "अब तो किसी को मेरा नाम तक स्मरण नहीं होगा। अब वे मेरी पूजा-आराधना नहीं करते।"

सरस्वती की दलील से सभी सहमत थे, परंतु धरती से किसी को बुलाने का निर्णय तो करना था। इसलिए यही निर्णय लिया गया कि

किसी लेखक को बुलाकर इस भेद को जाना जाए।

इस प्रकार धरती से एक लेखक को बुलाया गया। सरस्वती उसे अपने समक्ष बिठाकर उससे वार्तालाप करने लगीं।

"सुना है, मानव जाति आजकल बहुत बड़े-बड़े व्यापार कर रही है। परंतु तुमने सभी व्यापार छोड़कर एक लेखक बनने का निर्णय कैसे कर लिया?"

"मेरे पिता के पास थोड़ी-सी भूमि थी, परंतु खेती का काम तो हड्डियाँ तोड़कर रख देता है, वह सब मुझसे संभव नहीं था। बड़ी-बड़ी नौकरियाँ तो उच्च संपर्कों द्वारा ही प्राप्त होती हैं, मेरा किसी से संपर्क नहीं था। इसलिए दुःखी होकर मैंने कहानियाँ लिखनी शुरू कर दीं।"

"तो क्या फिर किसी प्रकार की मानसिक शांति प्राप्त हो सकी?"

"वह तो लोगों की प्रशंसा से प्राप्त होती है और प्रशंसा तो तभी



मिलती है जब रचना प्रकाशित हो जाए।"

"तुम्हारी रचना प्रकाशित नहीं होती ?"

"मैं जान नहीं पाया कि संपादक कैसे लेखकों की रचना प्रकाशित करते हैं। न तो मेरी रचना कोई संपादक छापता है, न कोई प्रकाशक मेरी पुस्तक ही प्रकाशित करता है। मैं खाने के लिए भी तरस रहा हूँ। इस निकम्मे काम से मैं दो समय के भोजन की भी व्यवस्था नहीं कर पाता।"

"हो सकता है तुमने अपनी देवी की आराधना न की हो और तुम्हारी लेखनी अभी तक इतनी सशक्त न हो पाई हो।"

लेखक क्रोधित हो उठा और कहने लगा, "मैं उसकी आराधना किस लिए करूँ ! उसने मुझे क्या दिया है ? जिस कारण मैं उसकी उपासना करूँ।"

सरस्वती ने धैर्यपूर्वक कहा, "तुम्हारी आराध्य देवी तुम्हारी लेखनी को शक्ति प्रदान कर सकती है।"

"अच्छा, किस प्रकार की शक्ति ?"

ऐसी शक्ति, जिससे लोग तुम्हारी लेखनी से निकलते हुए शब्दों की प्रतीक्षा करने लगें। प्रत्येक संपादक तुम्हें पत्र लिखकर तुम्हारी नई कहानी के लिए आग्रह करे तथा अनेक प्रकाशक तुम्हारे आगे-पीछे चक्कर काटते रहें।"

"अच्छा, इतनी शक्ति !"

"यदि कोई देवी तुम्हें इतनी शक्ति दे दे तो क्या फिर तुम उसकी

उपासना करोगे?"

लेखक अट्टहास करने लगा। फिर कहने लगा, "यदि मेरे पास इतनी शक्ति आ जाए तो फिर दूसरे लोग मुझे पूजने लगेंगे, मैं किसी की पूजा क्यों करने लगा !"

- *अमृता प्रीतम*

प्रश्न

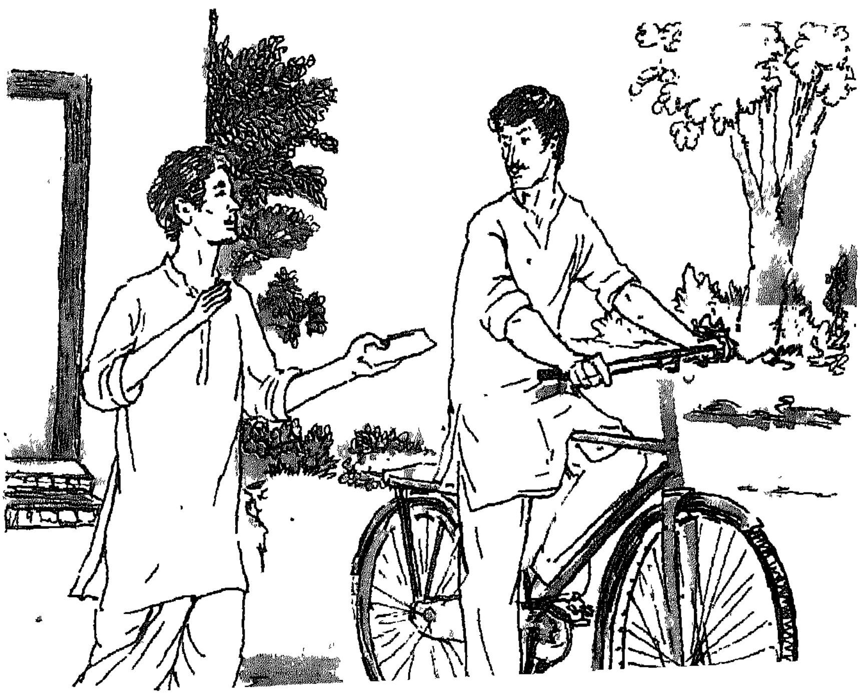
1. ईश्वर की उदासी का कारण क्या था ?
2. बीसवीं सदी के लोगों की दशा सुधारने के लिए विष्णु ने अपनी क्या विवशता प्रकट की ?
3. वरुण देवता ने धरती के लोगों के प्रति अपनी किन सेवाओं का उल्लेख किया ?
4. राजनीतिज्ञ, साधारण जन और लेखक में से देवताओं ने पूछताछ के लिए लेखक को ही बुलाना क्यों पसंद किया ?
5. लेखक के किस कथन से प्रकट होता है कि उसने केवल व्यवसाय के रूप में ही कहानी-लेखन को अपनाया था ?
6. लेखन की भरपूर शक्ति देने के प्रस्ताव पर भी लेखक ने सरस्वती की उपासना करना स्वीकार क्यों नहीं किया ?

10. बातूनी

आदमी सुविधा खोजने में मारा जाता है। उस शाम अगर मैं खुद जाकर लिफ़ाफ़ा पोस्टआफ़िस में छोड़ देता तो वह कष्ट न होता जो तभी से भुगत रहा हूँ।

उस शाम मुझे एक लिफ़ाफ़ा छोड़ना ज़रूरी था। मैं बाहर निकला। पोस्टआफ़िस बंद होने का समय हो रहा था। सामने से एक सज्जन (बाद में इन्हें मैंने कभी सज्जन नहीं कहा) साइकिल पर जाते दिखे। मैंने उन्हें रोककर कहा, "ज़रा एक लिफ़ाफ़ा लेकर इस कागज़ को उसमें रखकर, यह पता लिखकर डाक में छोड़ दीजिए।"

उन्होंने कहा, "सहर्ष।" बस उनके सहर्ष ने मेरा हर्ष तभी से जो छीना है, वह तो आज तक वापस नहीं मिला।



दूसरे दिन वे दिख गए, तो मैंने पूछा, "वह चिट्ठी डाल दी थी?"

आप बताइए, इसका जवाब ज़्यादा से ज़्यादा कितना लंबा हो सकता है ? यही कि– जी हाँ साहब, मैंने आपकी चिट्ठी टिकट लगाकर और पता लिखकर पोस्टआफ़िस के लाल लेटरबॉक्स में छोड़ दी थी। बस इससे ज़्यादा तो नहीं हो सकता।

पर उन्होंने यह जवाब दिया, "मैं पोस्टआफ़िस पहुँचा साहब। क्या देखता हूँ कि पोस्टआफ़िस बंद हो चुका है। अब मैं बड़ा परेशान। मैं कहूँ कि करूँ तो क्या करूँ ! आपकी चिट्ठी ज़रूरी है। आपने पहली बार तो कोई काम बताया। इतने दिनों से आप यहाँ रहते हैं, पर सेवा का कोई मौका ही नहीं मिला था। मैंने कहा, चाहे आकाश टूट जाए और पृथ्वी फट पड़े, पर आपका लिफ़ाफ़ा ज़रूर डालूँगा। तो साहब मैं बाहर निकला। अब मैं कहूँ कि जाऊँ तो कहाँ जाऊँ। इतने में साहब, मेरी नज़र पड़ी साहनी मेडिकल स्टोर पर। वहाँ साहनी बैठा था। मैं वहाँ गया। साहनी मेरा कई साल से दोस्त है। आप नहीं जानते, उसके पिता मेरे पिता के बड़े दोस्त थे। बाद में उसके पिता को एक दिन दिल का दौरा पड़ा और वे घंटे-भर में ही मर गए। ये सब आजकल दिल की बीमारी का भी बड़ा फैशन चल पड़ा है। तो मैंने कहा, "यार साहनी, लिफ़ाफ़ा दे।" उसने कहा, "लिफ़ाफ़ा तो नहीं है, टिकट है।" मैंने कहा, "ला टिकट ही दे।" मैंने साहब टिकट तो हाथ में कर ली। अब लिफ़ाफ़ा ? मैं बाहर खड़ा-खड़ा कहूँ कि लिफ़ाफ़ा कहाँ से लाऊँ? अब मुझे घबराहट होने लगी। आखिरी

डाक निकलने का वक्त हो रहा था। लिफ़ाफ़ा नहीं गया तो क्या होगा? हे भगवान, तू ही रास्ता बता। मैं तो इस गाड़ी से लिफ़ाफ़ा छोड़कर ही रहूँगा, चाहे मुझे स्टेशन ही क्यों न जाना पड़े। गाड़ी चल दी होगी, तो उसे रोककर लिफ़ाफ़ा छोड़ूँगा पर लिफ़ाफ़ा मिले कहाँ ? अचानक साहब मुझे राजू दिखा। वही राजू जो किताबों का एजेंट है। उसके हाथ में बस्ता था। मैंने सोचा, इसके पास ज़रूर लिफ़ाफ़ा होगा। मैंने कहा, "यार राजू, एक लिफ़ाफ़ा दे।" उसने कहा, "यार लिफ़ाफ़ा तो है पर उस पर फर्म का नाम छपा है।" मैंने कहा, "कोई बात नहीं। मैं उसे काट दूँगा।" मैंने लिफ़ाफ़ा ले लिया। जेब में हाथ लगाया तो कलम नहीं था। मैंने कहा, अजीब बेवकूफ़ हूँ। काम ले लिया और कलम लाया नहीं। भाग्य से राजू के पास पेन था। मैंने कहा, "यार पेन दे।" और उसने साहब, फ़ौरन निकाल कर दे दिया। राजू में इतनी बात अच्छी है। उसके पास कोई चीज़ हो तो फौरन दे देता है। अब मैं कहूँ कि काहे पर रखकर लिखूँ। मैंने झट उसका बस्ता लिया। उस पर लिफ़ाफ़ा रखा, उसकी फर्म का नाम काटा और पता लिखा और साहब, मैं भागा पोस्टऑफ़िस की तरफ़। अब संयोग से देखिए साहब, कि पहुँचा हूँ कि डाकिया चिट्ठियाँ निकालकर लेटरबॉक्स बंद कर रहा था। मैंने कहा, "भाई साहब, यह चिट्ठी भी ज़रूरी है। इसे डाक में शामिल कर लीजिए।" वह भला आदमी था। उसने लिफ़ाफ़ा ले लिया। तब साहब, मेरा मन हलका हुआ।"

यह मैंने बहुत संक्षेप में लिखा है। उन्होंने लगभग आधा घंटा

इस विवरण में लिया।

मैंने कसम खाई कि कभी इनसे कोई काम नहीं कराऊँगा। मगर जितना पाप कर चुका था, उसका फल तो भुगतना ही था। मेरा काम करके उन्होंने मेरे ऊपर हमेशा के लिए अधिकार जमा लिया था। रास्ते में उनका घर पड़ता था। मैं निकलता और उन्हें दिख जाता, तो वे बहुत खुश होकर मुझसे पूछते, "कहाँ जा रहे हैं ?"

मैं नहीं समझ पाता कि आमतौर पर लोग क्यों पूछते हैं कि आप कहाँ जा रहे हैं? वे क्या पुलिस के आदमी हैं या खुफ़िया विभाग के हैं या चाचा होते हैं कि जानना चाहते हैं कि तुम कहाँ जा रहे हो? यह असल में आदमी को रोककर बात करने की भूमिका है। जिसे जल्दी जाना है, वह भी होशियारी करता है। कहता है, "कहीं नहीं,



ऐसे ही।" और आगे बढ़ जाता है। क्या सवाल – कहाँ जा रहे हैं? और क्या जवाब है – कहीं नहीं, ऐसे ही। मगर लोग पूछते ही हैं और लोग जवाब भी देते हैं।

मैं जब रुक जाता और कहता – योंही ज़रा सिविल सर्जन से मिलने जा रहा हूँ। बस वे मुझे पकड़ लेते – अच्छा, डॉ. गुप्ता से। वे हमारे चाचा के बड़े अच्छे दोस्त थे। नागपुर में पास-पास बँगला था। हमारे घर आते, तो मुझे गोद में लेकर खिलाते थे। मिलते हैं, तो कहते हैं, "क्यों बेटा भूल गए ? घर नहीं आते हो।"

वे दस-पंद्रह मिनट तक डॉ. गुप्ता से अपने पारिवारिक संबंध बताते।

कभी मैं कहता, "प्रोफ़ेसर तिवारी जी से मिलने जा रहा हूँ।" वे कहते, "अच्छा-अच्छा तिवारी जी से मिलने ! हमारे फ़ादर इन-ला (ससुर) के वे बड़े पुराने दोस्त हैं। दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। अभी भी वे हमारे प्रति प्रेमभाव रखते हैं। कभी मिल जाते हैं, तो कहते हैं, कभी घर आओ।"

मैं किसी का भी नाम लेता वह उनके चाचा, मामा, ससुर या पिता का दोस्त निकल आता और वे दस-पंद्रह मिनट उसके संबंधों के बारे में बताते। मैं एक दिन कहूँगा, "डाकू ज़ालिम सिंह से मिलने जा रहा हूँ," तब वे शायद कहेंगे, "अच्छा ! वे तो मेरे पिता के अच्छे दोस्त थे। दोनों साथ ही डाका डाला करते थे। जालिम सिंह ने तो मुझे गोद में खिलाया है।"

फिर एक दिन कहूँगा, "भगवान से मिलने जा रहा हूँ।"

वे कहेंगे, "भगवान से। अच्छा-अच्छा ! वे तो हमारे चाचा के बड़े अच्छे दोस्त हैं। दोनों स्वर्ग में साथ काम करते थे। मेरा नाम उन्हें बताइए। वे पहचान जाएँगे। मुझे तो भगवान ने गोद में खिलाया है।"

अब अपनी यह हालत है कि उस रास्ते को छोड़कर करीब आधा मील का चक्कर लगाकर जाता हूँ। एक दिन वे बाज़ार में मिल गए। कहने लगे, "आजकल आप दिखाई नहीं देते।" मैंने कहा, "बाहर निकलता ही नहीं। घर में ही रहता हूँ।"

उन्होंने कहा, "अच्छा, तो फिर घर पर ही दर्शन करूँगा।"

मैं कहकर फँस गया। अगर वे घर पर दर्शन करने आ पहुँचे, तो घंटों बैठेंगे। सोच-विचार के बाद यह तय किया कि मैं फिर उनके घर के सामने से निकलना शुरू कर दूँ। वहीं दर्शन दे दूँ ताकि वे घर पर दर्शन करने न आ पहुँचे।

उन सज्जन से मुझे डर लगता है। वे मुझे दूर से देखते हैं, तो चेहरा खिल उठता है। मैं काँप जाता हूँ। वे घंटे भर से कम में नहीं छोड़ते। उनके चेहरे पर वही भाव होता है, जो सुरसा के मुख पर हनुमान को देखकर आया था। सुरसा ने कहा था, "आज सुरन्ह मोहिं दीन अहारा – आज देवताओं ने मुझे भोजन दिया।" ये सज्जन भी किसी परिचित को देखकर मन-ही-मन कहते हैं, "आज सुरन्ह मोहिं दीन अहारा।" वे पास आकर हाथ पकड़ लेंगे और एक पाँव से आपका पाँव दबा लेंगे और मुँह मिलाकर घंटे भर बकते जाएँगे। वे नर-भक्षी

हैं। हमने उनका नाम मैनईटर ऑफ़ चंपावत रख दिया है और राह देख रहे हैं कि कोई कर्नल जिम कार्बेट पैदा होगा, जो उनसे हमारी रक्षा करेगा।

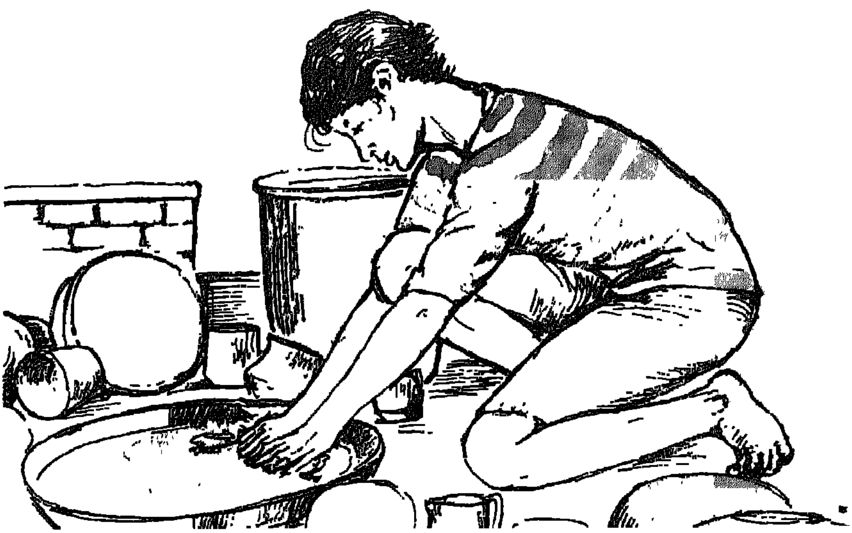
- हरिशंकर परसाई

प्रश्न

1. सुविधा पाने के चक्कर में लेखक को किस भारी असुविधा का सामना करना पड़ा ?
2. सामने दिखलाई पड़े सज्जन को लेखक ने फिर कभी सज्जन क्यों नहीं कहा ?
3. 'आप कहाँ जा रहे हैं ?' सवाल लेखक को अटपटा क्यों लगता है ?
4. लेखक ने लेटरबॉक्स में लिफ़ाफ़ा छोड़ने वाले सज्जन का नाम नरभक्षी मैनईटर ऑफ़ चंपावत क्यों रखना पसंद किया ?
5. इस कहानी में ऐसे तीन कथन छाँटिए जो बातूनी व्यक्ति के प्रति लेखक के करारे व्यंग्य को दर्शाते हैं ?

11. जी, आया साहब

बावर्चीखाने के धुँधले वातावरण में बिजली का एक अंधा बल्ब कब्र पर जलने वाले चिराग की तरह अपनी सुर्खी फैला रहा था। धुएँ से भूरी हुई दीवारें डरावने दैत्यों की तरह अँगड़ाइयाँ लेती हुई मालूम हो रही थीं। चबूतरे पर बनी हुई अँगीठियों में आग की आखिरी चिनगारियाँ उभर-उभर कर अपनी मौत का मातम कर रही थीं। बिजली के चूल्हे पर रखी हुई केतली का पानी पता नहीं किस चीज़ पर खामोश हँसी हँस रहा था। दूर कोने में पानी के नल के पास एक छोटी उम्र का लड़का बैठा बरतन साफ़ कर रहा था। यह इंस्पेक्टर साहब का नौकर था।



बरतन साफ़ करते हुए यह लड़का कुछ गुनगुना रहा था। उसकी ज़बान से बगैर किसी कोशिश के ये शब्द निकल रहे थे – "जी, आया साहब ! जी, आया साहब ! बस, अभी साफ़ हुए जाते हैं, साहब !"

अभी बरतनों को राख से साफ़ करने के बाद उन्हें पानी से धोकर करीने से रखना भी था और यह काम जल्दी से न हो सकता था। लड़के की आँखें नींद से बंद हुई जा रही थीं और सिर भारी हो रहा था। मगर काम किए बिना आराम उसे कैसे मिल सकता था !

बिजली का चूल्हा बदस्तूर एक शोर के साथ नीले शोलों को उगल रहा था। केतली का पानी उसी अंदाज़ में खिलखिला कर हँस रहा था।

अचानक लड़के ने नींद के हमले को महसूस करते हुए अपने शरीर को एक झटका दिया और 'जी, आया साहब ! जी, आया साहब !' गुनगुनाता हुआ फिर काम में मशगूल हो गया।

"कासिम ! कासिम !"

"जी, आया साहब !" लड़का जो इन्हीं शब्दों को रट रहा था, भागता हुआ अपने मालिक के पास गया।

इंस्पेक्टर साहब ने कंबल से मुँह निकाला और लड़के पर नाराज़ होते हुए कहा, "बेवकूफ़ के बच्चे ! आज फिर यहाँ सुराही और गिलास रखना भूल गया।"

"अभी लाया साहब ! अभी लाया साहब !"

कमरे में सुराही और गिलास रखने के बाद वह अभी बरतन साफ़ करने के लिए बैठा ही था कि फिर उस कमरे से आवाज़ आई, "कासिम ! कासिम !"

"अभी आया साहब !" कासिम भागता हुआ अपने आका (मालिक) के पास गया।

"बसई का पानी किस कदर खराब है ! जाओ, पारसी के होटल से सोडा लेकर आओ। बस, भागे हुए जाओ, सख़्त प्यास लग रही है।"

"बहुत अच्छा, साहब !"

कासिम भागा हुआ गया और पारसी के होटल से जो घर से लगभग आधे मील की दूरी पर था, सोडे की बोतल ले आया और अपने मालिक को गिलास में डाल कर दे दिया।

"अब तुम जाओ, मगर इस समय तक क्या कर रहे हो ? बरतन साफ़ नहीं हुए क्या ?"

"अभी साफ़ हो जाते हैं साहब !"

"और हाँ, बरतन साफ़ करने के बाद मेरे जूते पॉलिश कर देना, मगर देखना, चमड़े पर कोई खराश न आए, वरना ...."

कासिम को 'वरना' के बाद का वाक्य बखूबी मालूम था। "बहुत अच्छा, साहब !" कहते हुए वह रसोई में वापस चला गया और बरतन साफ़ करने लगा।

अब नींद उसकी आँखों में सिमटी चली आ रही थी, पलकें आपस में मिली जा रही थीं, सिर भारी हो रहा था। यह सोचते हुए कि

साहब के बूट भी अभी पॉलिश करने हैं, कासिम ने अपने सिर को ज़ोर से झटका दिया और वही राग अलापना शुरू कर दिया – "जी, आया साहब ! जी, आया साहब ! बूट अभी साफ़ हो जाते हैं, साहब !"

मगर नींद का तूफ़ान हज़ार बाँध बाँधने पर भी न रुका। तभी एक अजीब ख्याल उसके दिमाग में आया, "भाड़ में जाएँ बरतन और चूल्हें में जाएँ बूट ! क्यों न थोड़ी देर इसी जगह पर सो जाऊँ और फिर आराम करने के बाद ... "

पर इस विचार को गलत मानते हुए कासिम ने उसे वहीं त्याग दिया और बरतन पर जल्दी-जल्दी राख मलना शुरू कर दिया। थोड़ी देर बाद जब नींद फिर आने लगी तब मुँह पर पानी के छींटे मार-मार कर बड़ी मुश्किल से उसने सब बरतनों को आखिरकार साफ़ कर ही लिया। यह काम करने के बाद उसने इत्मीनान की साँस ली।



अब वह आराम से सो सकता था।

रसोई की रोशनी बंद करने के बाद कासिम ने बाहर बरामदे में अपना बिस्तर बिछाया और लेट गया। इसके पहले कि नींद उसे अपनी आरामदेह बाँहों में थाम ले, उसके कान 'बूट-बूट' की आवाज़ों से गूँज उठे।

"बहुत अच्छा, साहब, अभी पॉलिश करता हूँ।" बड़बड़ाता हुआ कासिम बिस्तर से उठा, जैसे उसके मालिक ने अभी-अभी बूट पॉलिश करने का हुक्म दिया हो। अभी कासिम बूट का एक पैर भी अच्छी तरह पॉलिश न कर पाया था कि नींद ने उसे अपने वश में करके उसे वहीं पर सुला दिया।

सुबह जब इंस्पेक्टर साहब ने अपने नौकर को बाहर बरामदे में बूटों के पास सोये हुए देखा तो उसे ठोकर मारकर जगाते हुए कहा, "यह सूअर की तरह यहाँ बेहोश पड़ा है और मेरा ख्याल था कि इसने बूट साफ़ कर दिए होंगे, नमकहराम ! अबे, कासिम !"

"जी, आया साहब !" कासिम के मुँह से इतना ही निकला था कि उसने अपने हाथ में बूट साफ़ करने का ब्रश देखा। तुरंत इस मामले को समझते हुए उसने काँपती हुई आवाज़ में कहा, "मैं सो गया था, साहब ! मगर बूट अभी पॉलिश हुए जाते हैं, साहब !" यह कहते हुए उसने जल्दी-जल्दी बूट को ब्रश से रगड़ना शुरू कर दिया।

बूट पॉलिश करने के बाद उसने अपना बिस्तर तह किया और उसे ऊपर के कमरे में रखने चला गया।

"कासिम !"

"जी, आया साहब !"

कासिम भागा हुआ नीचे आया और अपने आका के पास खड़ा हो गया।

"देखो, आज हमारे यहाँ मेहमान आएँगे, इसलिए बावर्चीखाने के तमाम बरतन अच्छी तरह साफ़ रखना। फर्श भी धुला हुआ होना चाहिए। इसके अलावा तुम्हें बैठक की तसवीरों, मेज़ों और कुरसियों को भी साफ़ करना होगा, समझे ? मगर ख्याल रहे मेरी मेज़ पर एक तेज़ धार वाला चाकू पड़ा हुआ है, उसे मत छूना। मैं अब दफ़्तर जा रहा हूँ। मगर ये काम दो घंटे से पहले हो जाने चाहिए।"

"बहुत अच्छा साहब !"

इंस्पेक्टर साहब दफ़्तर चले गए। कासिम रसोई साफ़ करने में मशगूल हो गया। डेढ़ घंटे की अथक मेहनत के बाद उसने रसोई का सब काम खतम कर दिया और हाथ-पाँव साफ़ करने के बाद झाड़न लेकर बैठक में चला गया।

थोड़ी देर बाद उसकी आँखों के सामने एक और मंज़र (दृश्य) नाचने लगा। अब उसके सामने छोटे-छोटे लड़के आपस में खेल, खेल रहे थे। अचानक आँधी चलनी शुरू हुई, जिसके साथ ही एक कुरूप और भयानक दैत्य प्रकट हुआ, जो उन सब लड़कों को निगल गया। कासिम को लगा कि उस दैत्य की शक्ल-सूरत उसके आका की-सी थी, हालाँकि कद-काठी के लिहाज़ से वह उससे कहीं बड़ा था। अब वह

दैत्य ज़ोर-ज़ोर से हुंकारने लगा। कासिम सिर से पैर तक काँप गया।

अभी तमाम कमरा साफ़ करना था और वक्त बहुत कम रह गया था। इसलिए कासिम ने जल्दी-जल्दी कुरसियों पर झाड़न मारना शुरू कर दिया। जब वह कुरसियों का काम निपटा कर मेज़ साफ़ करने जा रहा था, उसे एकाएक ख्याल आया – "आज मेहमान आ रहे हैं, खुदा जाने कितने बरतन साफ़ करने पड़ेंगे और यह नींद कमबख्त कितना सता रही है, मुझसे तो कुछ भी न हो सकेगा।"

यह सोचते समय वह मेज़ पर रखी हुई चीज़ों को पोंछ रहा था कि अचानक उसे कलमदान के पास एक खुला हुआ चाकू नज़र आया– वही चाकू, जिसके बारे में उसके आका ने कहा था कि बहुत तेज़ है।

चाकू देखते ही उसके मुँह से ये शब्द अपने-आप ही निकलने लगे, "चाकू ... तेज़ धार वाला चाकू ... यही तुम्हारी मुसीबत को खतम कर सकता है।"

कुछ और सोचे बिना कासिम ने वह तेज़ धार वाला चाकू उठाकर अपनी उँगली पर फेर लिया। अब वह शाम को बरतन साफ़ करने की ज़हमत से बहुत दूर था और नींद, प्यारी-प्यारी नींद अब उसे आसानी से नसीब हो सकती थी।

उँगली से खून की सुर्ख धार बह रही थी, सामने वाली दवात की सुर्ख रोशनाई से कहीं चमकीली। वह भागा हुआ अपने आका (मालिक) की बीवी के पास गया, जो ज़नानखाने में बैठी सिलाई कर रही थी और अपनी ज़ख्मी उँगली दिखाकर कहने लगा, "देखिए, बीवीजी।"

"अरे कासिम, यह तूने क्या किया ? कमबख्त, साहब के चाकू को छेड़ा होगा तूने।"

"बीवी जी .... बस मेज़ साफ़ कर रहा था और उसने काट खाया।" कासिम हँस पड़ा।

"अबे सूअर, अब हँसता है ? इधर आ, मैं इस पर कपड़ा बाँध दूँ। मगर अब बता तो सही, आज बरतन तेरा बाप साफ़ करेगा?"

कासिम अपनी जीत पर हलके-हलके मुसकरा रहा था।

उँगली पर पट्टी बाँध कर कासिम फिर कमरे में आ गया और मेज़ पर पड़े हुए खून के धब्बों को साफ़ करने के बाद खुशी-खुशी अपना काम खतम कर दिया।

"अब उस नमकहराम बावर्ची को बरतन साफ़ करने होंगे – और ज़रूर साफ़ करने होंगे – क्यों मियाँ मिट्ठू ?" कासिम ने अत्यंत प्रसन्न होकर खिड़की में लटके हुए तोते से पूछा।

शाम को मेहमान आए और चले गए। रसोई में साफ़ करने वाले बरतनों का एक ढेर-सा लग गया। इंस्पेक्टर साहब कासिम की ज़ख्मी उँगली देखकर बहुत बरसे और जी खोल कर गालियाँ दीं, मगर उसे मज़बूर न कर सके– शायद इसलिए कि एक बार उनकी अपनी उँगली में कलम तराशने वाले चाकू की नोक चुभ जाने से बहुत दर्द महसूस हुआ था।

आका की नाराज़गी आने वाली खुशी ने भुला दी और कासिम कूदता-फाँदता हुआ अपने बिस्तर में जा लेटा। तीन-चार दिनों तक

वह बरतन साफ़ करने के कष्ट से बचा रहा। मगर उसके बाद उँगली का ज़ख्म भर आया और अब फिर वही मुसीबत आ खड़ी हुई।

"कासिम, साहब की जुराबें और कमीज़ धो डालो।"

"बहुत अच्छा, बीवीजी !"

"कासिम, इस कमरे का फ़र्श कितना बदनुमा हो रहा है। पानी लाकर अभी साफ़ करो। देखना, कोई दाग-धब्बा बाकी न रहे।"

"बहुत अच्छा, साहब !"

"कासिम, शीशे के गिलास कितने चिकने हो रहे हैं। इन्हें नमक से साफ़ करो।"

"जी अच्छा, साहब !"



"कासिम, तोते का पिंजरा कितना गंदा हो रहा है। इसे साफ़ क्यों नहीं करते?"

"अभी करता हूँ, बीवीजी !"

"कासिम, अभी मेहतर आने वाला है। तुम पानी डालते जाना, वह सीढ़ियाँ धो डालेगा।"

"बहुत अच्छा, साहब !"

"कासिम, ज़रा भाग कर एक आने का दही तो ले आना।"

"अभी गया, बीवीजी !"

पाँच-छह दिन इसी तरह के आदेश सुनने में बीत गए। कासिम काम की अधिकता और आराम की कमी से तंग आ गया। हर रोज़ उसे आधी रात तक काम करना पड़ता और फिर सुबह सवेरे चार बजे के करीब जागकर नाश्ते के लिए चाय तैयार करनी पड़ती। यह काम कासिम की उम्र के लड़के के लिए बहुत ज़्यादा था।

एक दिन इंस्पेक्टर साहब की मेज़ साफ़ करते हुए उसके हाथ खुद-ब-खुद चाकू की तरफ़ बढ़े और एक लमहे के बाद उसकी उँगली से खून बह रहा था। इंस्पेक्टर साहब और उनकी बीवी कासिम की यह हरकत देखकर बहुत खफ़ा हुए। सज़ा के तौर पर उसे शाम का खाना न दिया गया। मगर वह अपनी खोजी हुई तरकीब की खुशी में मग्न था।

एक वक्त रोटी न मिली। उँगली में मामूली-सा ज़ख्म आ गया। मगर बरतनों का अंबार साफ़ करने से छुट्टी मिल गई – यह सौदा कुछ बुरा न था।

कुछ दिनों बाद उसकी उँगली का ज़ख्म ठीक हो गया। अब फिर काम की वही मार शुरू हो गई। पंद्रह-बीस दिन गधों की-सी मेहनत में गुज़रे। इस अरसे में कासिम ने बार-बार इरादा किया कि चाकू से फिर अपनी उँगली ज़ख्मी कर ले, मगर अब मेज़ से वह चाकू उठा लिया गया था और रसोई वाली छुरी कुंद थी।

एक दिन बावर्ची बीमार पड़ गया। अब कासिम को हर वक्त रसोई में मौजूद रहना पड़ता। कभी मिर्च पीसता, कभी आटा गूँधता, कभी कोयलों को हवा देता। सुबह से लेकर आधी रात तक उसके कानों में – "अबे कासिम, यह कर, अबे कासिम, वह कर," की पुकार गूँजती रहती।

बावर्ची दो रोज़ तक न आया। कासिम की नन्हीं जान और हिम्मत जवाब दे गई। मगर काम के सिवा चारा ही क्या था ?

एक दिन उसके आका ने उसे अलमारी साफ़ करने को कहा, जिसमें दवाओं की शीशियाँ और विभिन्न प्रकार की चीज़ें पड़ी हुई थीं। अलमारी साफ़ करते समय उसे दाढ़ी मूँड़ने का एक ब्लेड नज़र आया। ब्लेड को पकड़ते ही उसने अपनी उँगली पर फेर लिया। धार थी बहुत तेज़। उँगली में दूर तक उतर गई, जिससे बहुत बड़ा ज़ख्म बन गया।

"बीवीजी, मेरी उँगली में साहब का उस्तरा लग गया है।"

इंस्पेक्टर साहब की बीवी ने कासिम की उँगली को तीसरी बार ज़ख्मी देखा तो फ़ौरन मामले को समझ गई। चुपचाप उठी और कपड़ा निकाल कर उसकी उँगली पर बाँध दिया और कहा, "कासिम, अब तुम हमारे घर में नहीं रह सकते।"

"क्यों बीवीजी ?"

"यह साहब से पूछना।"

साहब का नाम सुनते ही कासिम का रंग और भी सफ़ेद हो गया।

चार बजे के करीब इंस्पेक्टर साहब दफ़्तर से घर आए और अपनी

बीवी से कासिम की नई हरकत सुनकर उसे फ़ौरन अपने पास बुलाया, "क्यों मियाँ, ये उँगली को हर रोज़ ज़ख्मी करने का क्या मतलब है?"

कासिम खामोश खड़ा रहा।

"तुम नौकर यह समझते हो कि हम लोग अंधे हैं और हमें बार-बार धोखा दिया जा सकता है। अपना बोरिया-बिस्तर दबाकर नाक की सीध में यहाँ से भाग जाओ, हमें तुम जैसे नौकरों की कोई ज़रूरत नहीं, समझे।"

"मगर ... मगर, साहब ..."

"साहब का बच्चा ! भाग जा यहाँ से, तेरी बकाया तनख्वाह का एक पैसा भी नहीं दिया जाएगा। अब मैं और कुछ सुनना नहीं चाहता।"

कासिम रोता हुआ कमरे से बाहर चला गया। तोते की तरफ़ हसरत भरी निगाहों से देखा। तोते ने भी खामोशी में उससे कुछ कहा। कासिम अपना बिस्तर लेकर सीढ़ियों से नीचे उतर गया। मगर अचानक कुछ ख्याल आया और वह भागा हुआ अपने आका की बीवी के पास गया और दर्दभरी आवाज़ में इतना कह कर कि "सलाम, बीबीजी, मैं हमेशा के लिए जा रहा हूँ।"

वहाँ से रुखसत हो गया।

* * *

खैराती अस्पताल में एक लड़का दर्द की शिद्दत (अधिकता) से लोहे के पलंग पर करवटें बदल रहा है। पास ही दो डॉक्टर बैठे हैं। उनमें से एक डॉक्टर ने अपने साथी से कहा, "ज़ख्म खतरनाक सूरत

अख्तियार कर गया है – हाथ काटना पड़ेगा।"

"बहुत बेहतर।"

यह कहते हुए दूसरे डॉक्टर ने अपनी नोटबुक में उस मरीज़ का नाम दर्ज़ कर लिया।

लकड़ी की एक तख्ती पर, जो उस बिस्तर के सिरहाने लटकी हुई थी, ये शब्द लिखे हुए थे :

नाम : मुहम्मद कासिम वल्द अब्दुर्रहमान (मरहूम)

उम्र : दस साल

अनु. कैसर शमीम

प्रश्न

1. कासिम को क्या-क्या काम करने पड़ते थे ?
2. कासिम काम करते समय और नींद में भी 'जी, आया साहब–जी, आया, साहब' क्यों बड़बड़ाता रहता था ?
3. आपकी दृष्टि में कासिम के प्रति इंस्पेक्टर का बर्ताव कहाँ तक उचित था ?
4. कासिम अपनी उँगली बार-बार क्यों काटता था ?
5. तीसरी बार उँगली काटने पर मालिक ने कासिम को नौकरी से क्यों निकाल दिया ?
6. सीढ़ियों से नीचे उतरने के बाद कासिम क्या सोचकर मालकिन के पास आया ?

12. भविष्य का भय

स्कूल से लौटकर आज तुलतुल ने न तो खाना ही खाया और न पार्क में खेलने गई। मुँह फुलाकर, चुपचाप छत की सीढ़ियों वाले दरवाज़े के पास बैठ गई। इस समय यहाँ कोई नहीं आता, इसीलिए गुस्से, दुःख और अपमान से आहत होकर तुलतुल यहीं दौड़ी आई थी। किताब का थैला रख ही रही थी कि दादी माँ बोल पड़ीं, "लो आ गई बहादुर लड़की ! और बहादुरी का फल भी देख लो। खैर तुम्हारा क्या ? भोगना तो हम लोगों को है।"

तुरंत माँ बोल उठी, "हम क्यों भोगने जाएँ ? जिसको बहादुरी का फल मिला है वही भोगे। आज से तुलतुल बरतन धोएगी, झाड़ू-पोंछा करेगी, मसाला पीसेगी। इसी के कारण तो टुनी की माँ काम छोड़कर भाग गई है।"

भैया ने भी साथ नहीं दिया बल्कि माँ की हाँ में हाँ मिलाकर बोला, "माँ ठीक कह रही हैं। इसके लिए यही उचित है।

"हाँ, सभी तुलतुल को ही दोष दे रहे हैं, उसी से तंग आकर टुनी की माँ नौकरी छोड़कर चली गई है।"

माँ मेज़ पर खाना लगा रही थीं और बोलती भी जा रही थीं, "खाना खाकर बदन में ताकत लाओ फिर काम में जुट जाओ, तुलतुल ! जब किसी का कहा कुछ सुनोगी नहीं तो और क्या होगा ?"

लेकिन क्या तुलतुल ऐसा खाना खाएगी ?

तुलतुल ने स्कूल की यूनिफ़ार्म भी नहीं उतारी, बस तीर की भाँति छत की सीढ़ी पर जाकर बैठ गई। पहले तो उसे थोड़ा रोना आया। स्कूल से लौटते ही इतनी भूख लगती है। पर तुलतुल रोई नहीं, बल्कि यही सोच रही थी कि महरी को उसने किस तरह से तंग किया था। कल स्कूल से लौटते ही महरी को उसने सिर्फ़ इतना ही तो कहा, "ओ टुनी की माँ। इतनी ठंड में टुनी को सिर्फ़ फटी फ्राक पहनाई है और उस पर उससे चाय के बरतन धुलवा रही है ?"

टुनी की माँ बोली थी, "हर रोज़ थोड़े ही धोती है। जल्दी के समय बस थोड़ा हाथ भर बँटा देती है।"

तुलतुल कहने लगी, "वाह ! क्या खूब कही तुमने ? तुम कैसी माँ हो ? यह भी नहीं जानती कि अंतर्राष्ट्रीय बालवर्ष है !"

और फिर टुनी की माँ की आश्चर्य से भरी आँखों को देखकर तुलतुल बोली, "उफ ! तुम तो इस बात के माने ही नहीं समझोगी। सुनो, हमारी मिस ने कहा है।"

टुनी की माँ हाथ का काम छोड़कर बोली, "किसने कहा है ?"

"अरे बाबा हमारी स्कूल की मास्टर दीदी, समझी कुछ '? उन्होंने कहा है, यह जो नया साल चल रहा है, यह साल छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों का है। इस साल छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों की ज़्यादा देखभाल करनी होगी और उन्हें प्यार करना पड़ेगा। अच्छा-अच्छा खाना

देना होगा, अच्छे-अच्छे कपड़े और जूते पहनने के लिए देने होंगे, उन्हें पढ़ाना-लिखाना होगा, बच्चे बीमार न पड़ें उसका भी ख्याल रखना होगा, बच्चों से कोई गंदा-छोटा काम नहीं करवाया जाएगा। बात समझ में आई ?"

टुनी की माँ थोड़ा हँसकर बोली, "आई समझ में।"

और फिर अपनी लड़की से कहा, "मुँह फाड़े बात निगलने की ज़रूरत नहीं है, जल्दी-जल्दी हाथ चला।"

तुलतुल ने गुस्से के मारे कहा, "खाक समझी है। खबरदार टुनी, जो तुमने फिर पानी छुआ। इतनी ठंड है और उससे भी अधिक ठंडे पानी में हाथ डुबोकर चाय के बरतन धो रही है। कह रही हूँ छोड़ दे।"

तुलतुल की मिस ने कहा है, "हमारे घरों में जो काम करने आते



हैं यानी जो बरतन माँजते हैं, कपड़े धोते हैं, झाड़ू-पोंछा करते हैं, उनके बच्चों को ही यदि हम सिर्फ़ थोड़े प्यार की आँखों से देखें, अगर कोशिश करें कि वे भी थोड़ा अच्छा खा लें, सरदी के दिनों में पूरा बदन ढकने का कपड़ा मिल जाए, पढ़ने-लिखने की सुविधाएँ दी जाएँ, बीमारी में दवा मिल जाए तो लगेगा दुनिया में हमने कुछ अच्छा काम किया है। हालाँकि तुम सभी अभी बच्चे ही हो फिर भी अभी से सोचना सीखो – कैसे दुनिया में किसी के काम आओगे। एक बात ध्यान में रखना, दुनिया में सभी आदमी बराबर हैं। सभी छोटे बच्चों को प्यार पाने और देखभाल किए जाने का अधिकार है।"

तो फिर मिस के कहे अनुसार क्या तुलतुल कोशिश भी नहीं करेगी और फिर टुनी तो तुलतुल से भी छोटी है। दुबली-पतली हड्डियों का ढाँचा मात्र दिखती है, ऐसी टुनी ठंडे पानी में बरतन धोएगी और तुलतुल गरम पानी में हाथ-मुँह धोकर गरम कपड़े पहनकर गरम-गरम पूरियाँ खाएगी ?

रोज़-रोज़ ऐसा ही होता था, यह सच है। पर अब तुलतुल बड़ों को ऐसी भूल नहीं करने देगी। आज तुलतुल समझ गई है कि ऐसा करना बहुत खराब बात है। अंतर्राष्ट्रीय बालवर्ष में टुनी जैसे बेचारे बच्चों की देखभाल होनी ही चाहिए।

इसीलिए तो तुलतुल चिल्लाकर बोली, "माँ नाश्ता दो ... और फिर टुनी से कहा, "ऐ टुनी, मेरे साथ चल, पूरियाँ खाएँगे।" सुनकर माँ वहीं से बोली, "ओह तुलतुल ! तू बेमतलब में देर क्यों कर रही है?

पूरियाँ उसे भी दूँगी। पहले तू खा।"

"क्यों, पहले मैं क्यों खाऊँगी ?"

"तू अभी-अभी स्कूल से आई है। अच्छा टुनी को भी पूरियाँ दे रही हूँ, तू तो बैठ।"

टुनी की माँ तुलतुल से बोली, "जाओ मुन्नी। देर करने पर माँ डाँटेंगी। आज क्या तुम्हें भूख नहीं लगी है ... टुनी तू तब तक कोयला तोड़ दे, सुबह के लिए एक चूल्हा तैयार कर रख छोड़ूँ।

फिर क्या था तुलतुल ने टुनी के हाथ से कोयला तोड़ने का हथौड़ा छीनकर फेंक दिया और बोली, "माँ की बात कभी मत सुनना। यह बालवर्ष है, समझी ! बालवर्ष में बच्चों को गंदा काम करना मना है ... आज से तू डिपो से दूध लेने नहीं जाएगी। माँ के साथ सड़क से सड़ा हुआ गोबर नहीं उठाएगी। बात समझ में आ रही है न ! दिमाग में कुछ घुसा !"

तुलतुल की इतनी बातों के जवाब में टुनी डरी-डरी-सी बोली, "हथौड़ा लौटा दो दीदी ! नहीं तो माँ मुझे बहुत डाँटेंगी।"

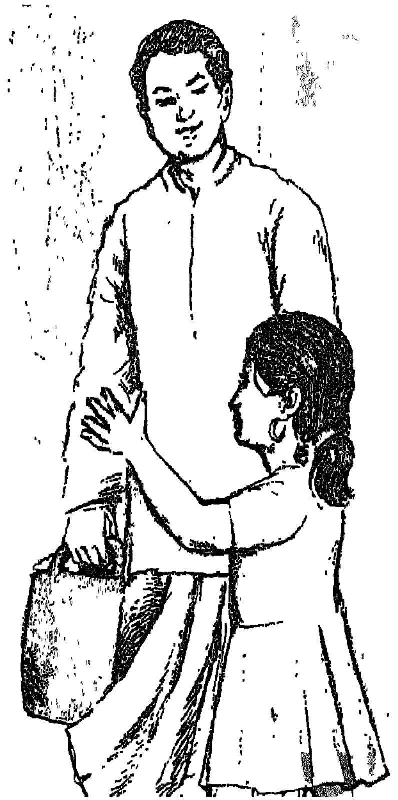
"डाँटने तो दो। मिस से कह दूँगी। मज़ा चखा देंगी। तू अब भी क्यों खड़ी है? आ न मेरे साथ।"

इतना कहकर टुनी का हाथ पकड़कर तुलतुल उसे खींचती हुई खाने की मेज़ पर लाई। कुछ लगा नहीं था पर बेवकूफ़ लड़की रोने लगी। असल में वह डाँट के डर से रो रही थी। तुलतुल क्या यह समझ नहीं रही थी ?

उसकी माँ जल्दी-जल्दी संदेश के खाली बक्से में चार-पाँच पूड़ियाँ थोड़ी-सी आलू की सूखी सब्जी और थोड़ा-सा गुड़ रखकर बोली, "जा टुनी, माँ के पास जाकर खा ले।"

टुनी जान बचाकर भागी।

तुलतुल ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि कल से अगर माँ ने टुनी को भी एक जैसा खाना नहीं दिया तो तुलतुल भी खाना नहीं खाएगी। उसने माँ से कह भी दिया। बोली, "मैं तो अच्छी भली मोटी हूँ, फिर भी इतना खाना देती हो और टुनी चिड़िया जैसी है उसे कुछ नहीं देती। जानती नहीं माँ, यह बालवर्ष है ?"



माँ बोली, "जानती हूँ। ज़्यादा बक-बक मत कर। लड़की के सर पर तो भूत सवार हुआ है।"

लेकिन भूत जम कर बैठ गया हो तो कोई चारा भी नहीं है।

खाना खाने के बाद तुलतुल ने देखा टुनी और उसकी माँ घर जा रही हैं। तुलतुल

ने डाँटकर नहीं, अच्छी तरह से कहा, "कल से टुनी यह सब गंदा काम नहीं करेगी। कल पापा तुझे स्कूल में दाखिल करवा देंगे।"

क्या यह टुनी की माँ को तंग करना हुआ ?

तुलतुल ने जाकर अपने पापा से सारी बातें कहीं। पापा सुनकर बोले, "सच में दाखिल करवाना चाहिए और आजकल तो स्कूल में फ़ीस भी नहीं देनी पड़ती। किताब-कॉपी सब मुफ़्त मिलते हैं। टिफ़िन में खाना भी मुफ़्त मिलता है।"

"सच पापा ?"

"हाँ, मुन्नी, बिलकुल सच। यह नियम हो गया है।"

"तो फिर टुनी हिसाब हल कर पाएगी?"

"क्यों नहीं। सीखने पर ज़रूर कर सकेगी।"

"किताब पढ़ सकेगी, पापा ?"

"ज़रूर पढ़ सकेगी। कल सुबह जैसे ही वे लोग आएँगे टुनी को पकड़कर स्कूल में बैठा आऊँगा।"

तुलतुल खुशी के मारे झूम उठी।

अहा ! कल बड़ा मज़ा आएगा।

स्कूल में पहुँचते, तुलतुल मिस को जाकर कहेगी "मिस, मैंने आपका कहना माना है। हमारे घर में जो काम करती है उसकी लड़की को .... ही-ही .... स्कूल में ही ....।"

ही-ही तो तुलतुल ने यहीं कर लिया। स्कूल में मिस के सामने यह सब नहीं चलेगा। स्कूल में गंभीर, शांत, सभ्य ढंग से बात करनी

पड़ती है।

रात में सोते समय तुलतुल का मन बड़ा खुश था। सोते समय उसने माँ को निर्देश दिया, "कल मेरे साथ-साथ टुनी को भी खाना दे देना। माँ ! टुनी को भी अच्छी-अच्छी चीजें खाने के लिए देना। समझी न माँ।"

माँ नाराज़ होकर बोली, "सब समझ गई। तार-तार समझ गई। अब, ज़रा बकना बंद कर और कृपा करके सो जा।"

तुलतुल तुरंत सो गई।

ओ माँ ! सुबह उठकर तुलतुल ने देखा यह क्या ? यह सुबह तो रोज की तरह ही सुबह है। पापा को उन्हें ले जाने की कोई जल्दी ही नहीं है। पापा घर पर ही नहीं थे। बाज़ार चले गए थे और टुनी ज्यों की त्यों फटी फ्राक पहनकर चाय के ढेर सारे बरतन धो रही थी।

तुलतुल नल के नीचे से टुनी को खींचकर बोली, "कल क्या कहा था?" टुनी बेवकूफ की तरह अपनी माँ को देख रही थी। टुनी की माँ बोली, "मुन्नी को क्या हो गया है ? दिमाग फिर गया है क्या?"

तुलतुल सीधे दुमंजिले पर पहुँची और कल शाम माँ से जो कपड़े लिए थे उन्हें लाकर टुनी को पहनने का हुक्म दिया और बोली, "पापा के लौटते ही स्कूल जाएँगे, समझी। और उसके पहले तू मेरे साथ खाना खाएगी। याद रहेगा ?"

क्या इसे टुनी की माँ को तंग करना कहा जाएगा ?

उसे तो उस समय स्कूल जाने के लिए नहीं कहा था !

खाना खाते समय टुनी को न देखकर तुलतुल चिल्लाकर उसे पुकारने लगी। दादी माँ बोली, "टुनी अपने पापा से पूछने गई है।"

"क्या पूछने गई है ?"

"वह, स्कूल जाएगी या नहीं, यह अपने पापा से नहीं पूछेगी क्या? तुम्हारे कहने से ही होगा ? टुनी की माँ इसलिए बरतन छोड़कर लड़की को लेकर घर पूछने गई है।"

दादी माँ की बात तो थोड़ी-थोड़ी ठीक लगती है पर तुलतुल को थोड़ा डर भी है।

टुनी के पापा कहीं उसे स्कूल जाने से मना न कर दें। इन लोगों का कोई भरोसा नहीं। अभी-अभी तो टुनी की माँ बोली थी कि पढ़ने-लिखने से गरीब आदमी का काम चलेगा कैसे ?

"फ़ीस नहीं लगेगी, किताब के पैसे नहीं लगेंगे यह सुनकर भी टुनी की माँ चुप रही।" यह बात घर जाकर वह ज़रूर कहेगी।

तुलतुल जब जूते-मोज़े, पहन रही थी, पापा बाज़ार से लौट आए। तुलतुल बोली "ओह पापा, आप बड़े डेंजरस हैं। (यह बात वैसे अक्सर पापा ही तुलतुल को कहते हैं)। इतनी देर कर दी आपने ? टुनी भी देर कर रही है। उसके आते ही उसे स्कूल में लेकर आ जाइएगा। यहीं पास के स्कूल में भरती करवा दीजिएगा। वहाँ बिना जूते-मोज़े पहने भी घुसने देते हैं, पापा। टुनी बेचारी के पास तो कुछ भी नहीं है। जब वह पास कर जाएगी, आप उसे जूते-मोज़े खरीदकर देंगे न

पापा ? उसके पापा के पास ज़्यादा रुपए नहीं हैं इसलिए नहीं दे सकते। आप तो देंगे न पापा ?"

फिर पापा का जवाब सुनने से पहले ही स्कूल की बस आ गई थी। और अब शाम को बस से उतरते ही उसे यह सुनना पड़ा कि टुनी की माँ ने तुलतुल की हरकतों से तंग आकर काम छोड़ दिया है। सुबह जो अधमँजे बरतन को छोड़कर चली गई थी, फिर वापस नहीं लौटी। पड़ोस के घर की सुखदा भी उसी मुहल्ले की है। माँ ने उसे भेजा था पर टुनी की माँ ने कहलवा दिया कि वह अब काम नहीं करेगी।

इसके माने टुनी की माँ का पापा से पूछने जाना एक बहाना था। बक़वास था। वह स्कूल के डर से भाग गई।

ताज्जुब है ! कितनी बेवकूफ़ है वह !

घर के जो बड़े लोग हैं, उनमें से कोई तो टुनी की माँ को दोष नहीं दे रहा है। सभी तुलतुल की बेवकूफ़ी की बात कर रहे हैं। और ये लोग सभी पढ़े-लिखे लोग हैं ! लोग तो जानते हैं बालवर्ष में क्या-क्या करना चाहिए। रोज तो अखबार पढ़ते हैं।

असल में बड़ों को समझा ही नहीं जा सकता। बड़े लोग कभी कुछ बोलते हैं तो कभी कुछ। उनके सभी काम बड़े उलटे किस्म के हैं।

उस बार की तो बात है। तुलतुल जलपाईगुड़ी में नाना के घर गई थी। नानाजी ने तुलतुल को 'दया के सागर विद्यासागर' पुस्तक

खरीद कर दी। उस समय वे क्या बोले थे ?

"महान व्यक्तियों की जीवनी पढ़, तुलतुल ! जितना हो सके, ऐसी किताबें पढ़ना, समझी ? पढ़ना और इनके आदर्शों पर चलना।"

ओह माँ ! उसके कई दिन बाद की बात है। जलपाईगुड़ी में बड़ी ठंड पड़ी थी। एक गरीब लड़का कोई पुराना कपड़ा माँग रहा था। तुलतुल ने अपना पहना हुआ कार्डिगन खोलकर उसे दे दिया। बाप रे बाप ! नानाजी ने ऐसी डाँट लगाई कि क्या कहना ! पागल, सिरफिरी लड़की, कहकर नानाजी और भी कुछ बड़बड़ाने लगे। क्यों ? विद्यासागर क्या अपने शरीर के कपड़े उतार कर गरीबों को नहीं दे देते थे ?

नानाजी बाद में हँसकर मज़ाक करते हुए बोले, "अब कान पकड़ता हूँ। किसी को विद्यासागर की जीवनी नहीं खरीद कर दूँगा। इतनी कीमती ऊनी कार्डिगन इस लड़की ने सड़क के भिखारी को दे दिया ?"

रास्ते के भिखारी को नहीं देगी तो क्या तुलतुल पैसे वालों के लड़के-लड़कियों को देगी ? देने पर भी वे क्या लेंगे ? और तुलतुल उन्हें देगी भी क्यों ? उनके पास नहीं है क्या ?

नीचे से भैया की आवाज़ सुनाई दी, "ऐ तुलतुल, खाना खाने आ न, छत पर क्यों बैठी है ?"

तुलतुल का मन डोल उठा। पेट में चूहे कूद रहे थे। फिर भी तुलतुल कठोर बनी बैठी रही। इतने में ही वह हिम्मत हार जाएगी? .... मिस ने यह भी कहा था, कितने बच्चों को दो बार भरपेट खाना

भी नहीं मिलता ...।

भैया ने फिर पुकारकर कहा, "बरतन धोने के डर से नीचे नहीं उतर रही है, क्या ? हा, हा, हा। ही, ही, ही। इतना डरने की ज़रूरत नहीं, तुम्हारा कसूर माफ़ कर दिया गया है ...।"

तुलतुल ने भी चिल्लाकर बोलना चाहा, "दंड किस चीज़ का ? मैंने क्या कोई गलती की है ?" पर वह कुछ बोल नहीं पाई। उसकी आवाज़ रुँध गई। अब दादी माँ ने पुकारा, "तुलतुल, पूरियाँ ठंडी पड़ रही हैं।"

तुलतुल मुँह कठोर बनाकर वैसी ही बैठी रही।

इसके बाद ही माँ आई।

"यह क्या नखरा हो रहा है ? तुम्हें क्या सचमुच ही बरतन माँजने और कपड़े धोने के लिए कहा गया है ? सरदी के दिनों में काम का आदमी छूट जाए तो कैसा लगता है, तू क्या समझेगी ? कोई तुम्हें बेमतलब डाँटना थोड़े ही चाहता है ? ले अब, चल उठ। खाना खा ले। ज्यादा नखरे की ज़रूरत नहीं।"

तुलतुल गुस्से में ही बोली, "मैं नहीं जाती, जाओ। मैं नहीं खाऊँगी।"

"ठीक है। आने दो तुम्हारे पापा को, लाड़ली बेटी को इतना प्यार करने का मज़ा भी वे देख लें। बेटी की 'हाँ' में 'हाँ' मिलाकर बोले, "हाँ-हाँ टुनी को स्कूल में दाखिला दिला देना अच्छा रहेगा।" पर तू ही सोच टुनी अगर स्कूल जाने लगेगी तो उसकी माँ का कैसे गुज़ारा होगा ? टुनी कितना हाथ बँटाती है।"

तुलतुल के गले में आज दुगनी ताकत थी। झटक कर बोली, "यही तो खराब है। मिस ने कहा है, छोटे-छोटे बच्चों से काम कराना बहुत बड़ा पाप है। समझी ? तुम सभी पापी हो।"

पर माँ इस भयंकर बात को सुनकर भी नहीं घबराई। बल्कि हँसकर बोली, "क्या करूँ, तू बोल ? पापी संसार में जन्म लिया है, पापी बनकर रह रही हूँ। इस दुनिया को नए सिरे से बदलने की क्षमता तो मेरी है नहीं और अगर ऐसा न किया जाए तो इस संसार का उद्धार भी नहीं होने का। तू जब बड़ी होगी तो इसे बदल डालना। तू और तेरे दोस्त सभी मिल कर। हम लोगों की तरह का पाप, तुम लोग नहीं करना।"

इस बात से न जाने क्या हुआ।

अचानक तुलतुल बिलखकर रो उठी। माँ से लिपटकर बोली, "पर माँ, अगर बड़ी होकर मैं भी तुम्हारी तरह उलट-पलट जाऊँ तो ? अगर बेवकूफ़ बन जाऊँ तो ? अगर यह भूल जाऊँ कि सभी लोग एक समान हैं ।"

अनु देवलीना केजरीवाल

प्रश्न

1. स्कूल से लौटी तुलतुल की नाराज़गी का क्या कारण था ?
2. 'लो आ गई बहादुर लड़की' दादी ने तुलतुल के लिए ऐसा क्यों कहा ?

3. तुलतुल टुनी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहती थी और क्यों ?
4. विद्यासागर की जीवनी पढ़ने का तुलतुल पर क्या असर हुआ ?
5. टुनी के प्रति तुलतुल के व्यवहार और घर के अन्य लोगों के व्यवहार में क्या अंतर था ?
6. कहानी के अंत में माँ की बात सुनकर तुलतुल बिलखकर क्यों रो पड़ी ?

परिशिष्ट

लेखक परिचय

पन्नालाल पटेल

गुजराती के अग्रणी कथाकार श्री पन्नालाल पटेल अन्य भारतीय भाषाओं में भी लोकप्रिय हैं। इनका जन्म डुंगरपुर (राजस्थान) के मंडली गाँव में 7 मई 1912 को हुआ था। इनकी कहानियों और उपन्यासों में गुजरात के जन-जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। गुजरात के देहाती अंचल के मानवीय चरित्रों की विशेषताओं को व्यक्त करने में पन्नालाल पटेल को विशेष सफलता मिली है। इनकी कृति 'मानवीनी भवाई' (जीवन एक नाटक) पर 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार प्रदान किया गया था।

सौ से अधिक रचनाओं के लेखक पन्नालाल पटेल गुजरात सरकार द्वारा कई बार पुरस्कृत हो चुके हैं। इनकी अनेक कहानियों और उपन्यासों का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इनकी रचनाओं में 'मानवीनी भवाई' के अतिरिक्त 'अमावस्या की उजरी रात', 'पार्थ ने कहो चढ़ावे बाण' (पाँच खंड), 'वलामणां', 'धम्मर वलोणु' (उपन्यास),'तिलोत्तमा' तथा 'वात्रकने कांठे' (कहानियाँ) उल्लेखनीय हैं।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर

ईश्वरचंद्र विद्यासागर बंगाल के ही नहीं, बल्कि पूरे भारतवर्ष के जाने-माने विद्वान, शिक्षाविद् और समाज-सुधारक थे। इनका जन्म सन् 1820 में मिदनापुर (बंगाल) के बीरसिंह गाँव में हुआ था। बँगला के अतिरिक्त इनका संस्कृत तथा अंग्रेज़ी भाषा पर विशेष अधिकार

था। बंगाल, बिहार और उड़ीसा में शिक्षा के प्रसार के लिए तथा स्त्री-शिक्षा की उन्नति के लिए विद्‌यासागर ने सराहनीय कार्य किया है। इन्होंने सरल भाषा में सुंदर पाठ्‌यपुस्तकों के अलावा संस्कृत और अंग्रेज़ी के उत्तम साहित्य का अनुवाद भी किया है।

विद्‌यालयों में पढ़ाने के लिए विद्‌यासागर ने 'जीवन चरित', 'बोधोदय', 'कथामाला', 'आख्यानमंजरी' आदि पुस्तकों की रचना की। कालिदास और भवभूति पर आधारित 'शकुंतला' और 'सीता वनवास' के अतिरिक्त इन्होंने शेक्सपीयर की कृतियों का भी बँगला में अनुवाद किया है।

अनंतदेव शर्मा

अनंतदेव शर्मा असमिया भाषा के सफल बाल-साहित्यकार के रूप में विख्यात हैं। इन्होंने बच्चों के लिए एक से बढ़कर एक रोचक उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं।

अनंतदेव शर्मा की कहानियों की विशेषता यह है कि उनमें मनोरंजन के साथ-साथ जीवन के लिए संदेश एवं नैतिक शिक्षा भी मिलती है।

इनका निधन अल्पायु मे ही हो गया था। किंतु इनकी रचनाएँ आज भी नव-लेखकों के लिए आदर्श उपस्थित करती हैं।

देवेंद्र सत्यार्थी

पंजाबी और हिंदी के जाने-माने लोककथा के युगपुरुष देवेंद्र सत्यार्थी का जन्म संगरूर (पंजाब) में 28 मई 1908 को हुआ था। लोकगीतों और लोक-कथाओं की तलाश में सत्यार्थी ने समूचे भारत की कई बार यात्राएँ की हैं, इसलिए उनकी रचनाओं में दक्षिण के मलय-पवन के साथ आने वाली चंदन की महक, विंध्याचल की पर्वतीय सुषमा और हिमालय की वादियों का सौरभ है।

मातृभाषा पंजाबी के अतिरिक्त हिंदी, अंग्रेज़ी और उर्दू पर इनका समान अधिकार है।

सत्यार्थी कुछ समय तक भारत सरकार के प्रकाशन विभाग की पत्रिका 'आजकल' के संपादक भी रहे हैं।

सत्यार्थी की कृतियो में प्रमुख हैं, 'ब्रह्मपुत्र, 'दूधगाछ', 'रथ के पहिये' (उपन्यास), 'बेला फूले आधी रात', 'धीरे बहो गंगा', 'धरती गाती है' (लोकगीत), 'एक युग एक प्रतीक' 'रेखाएँ बोल उठीं' (निबंध) आदि।

अंतोन चेखोव

रूसी कथाकार और नाटककार अंतोन चेखोव का जन्म तगनरॉग (रूस) में 17 जनवरी 1860 को हुआ था। मध्यवर्गीय परिवार में जन्मे चेखोव को अपने बचपन और जवानी में काफी संघर्ष करना पडा। शुरू में वे हास्य-व्यंग्य की पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखते थे, बाद में उनकी कहानियों और उपन्यासों में काफी गंभीरता आती गई। चेखोव ने बच्चों के लिए भी काफी लिखा है। समाज के उपेक्षित वर्गों की समस्याओं का इन्होंने सफल चित्रण किया है।

थियेटर में भी चेखोव ने सफल प्रयोग किए। 'सी गल', 'तीन बहनें', 'चेरी आर्चर्ड' आदि उनके नाटक काफी लोकप्रिय हैं।

चौवालीस वर्ष की अल्पायु में ही इस महान कलाकार का निधन हो गया।

र. शौरिराजन

र. शौरिराजन का जन्म तमिलनाडु के तंजाऊर जिले में हुआ था। दक्षिण में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए इन्होने सराहनीय कार्य किया है। 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार समाचार' और 'ज्ञानभूमि' के संपादक-मंडल मे कार्य करते हुए लेखन की ओर इनकी रुचि बढ़ी। अनुवाद के माध्यम से हिंदी और तमिल साहित्य के आदान-प्रदान के क्षेत्र में इनका योगदान उल्लेखनीय है।

भारत सरकार तथा विभिन्न साहित्यिक एवं सार्वजनिक संस्थाओं से पुरस्कृत शौरिराजन हिंदी के स्वतत्र लेखक भी हैं।

रमेश उपाध्याय

रमेश उपाध्याय हिंदी के लोकप्रिय कहानीकारों मे गिने जाते हैं। इनका जन्म 1 मार्च 1942 को एटा जिले (उत्तर प्रदेश) के बधारी गाँव में हुआ था। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' और 'नवनीत' में उपसंपादक के रूप में कार्य करने के बाद उपाध्याय जी इस समय व्यावसायिक अध्ययन महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य कर रहे हैं।

इनकी कृतियों मे 'शेष इतिहास', 'नदी के साथ', 'बदलाव मे पहले' (उपन्यास), 'पेपरवेट' (नाटक) आदि उल्लेखनीय हैं।

अमृता प्रीतम

अमृता प्रीतम पंजाबी की सफल कवयित्री, निबंधकार, कहानीकार और उपन्यासकार हैं। हिंदी पाठको के बीच में भी वे काफी लोकप्रिय हैं। इनका जन्म गुजराँवाला (पाकिस्तान) में 31 अगस्त 1919 को हुआ था। दिल्ली विश्वविद्यालय ने उत्कृष्ट लेखन के लिए इनको मानद डी.लिट. की उपाधि प्रदान की।

पचहत्तर से अधिक कृतियों की रचयिता अमृता प्रीतम भारत सरकार द्वारा पद्मश्री उपाधि से सम्मानित तथा साहित्य अकादमी तथा ज्ञानपीठ पुरस्कारों से विभूषित हैं। 1986 में इन्हें राज्य सभा का सदस्य मनोनीत किया गया। इनके अनेक उपन्यासों और कहानियों का अनुवाद भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त संसार की अनेक भाषाओं में हुआ है।

इनकी उत्कृष्ट कृतियाँ हैं : 'यात्री', 'तेरहवाँ सूरज', 'जलते बुझते लोग' (उपन्यास), 'रसीदी टिकट' (आत्मकथा), 'तीसरी औरत' (लघु उपन्यास), 'सुनहरे कागज़ के कन्वास' (कविताएँ), 'काल चेतना' (संस्मरण), 'रतना और चेतना' पर क्रमशः 'डाकू' और 'कादंबरी' फिल्मे निर्मित हुईं।

हरिशंकर परसाई

हिंदी के जाने-माने व्यंग्य-लेखक और कथाकार हरिशकर परसाई पत्रकारिता के क्षेत्र में भी काम कर चुके हैं। इनका जन्म 24 अगस्त 1924 को होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) के जमानी गाँव में हुआ था। कला परिषद् तथा उत्तर प्रदेश अकादमी द्वारा पुरस्कृत परसाई को हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' की मानद उपाधि भी प्राप्त है।

हिंदी साहित्य में परसाई जी सफल व्यग्य लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनकी कृतियों में 'नागफनी की कहानी' (उपन्यास), 'सदाचार का ताबीज़', 'वैष्णव की फिसलन', 'निठल्ले की डायरी' (व्यंग्य-कहानियाँ), 'पगडंडियों का जमाना' (निबंध) आदि उल्लेखनीय हैं। परसाई जी की सभी रचनाएँ 'परसाई रचनावली' (6 खंडो में) प्रकाशित हैं। सन् 1988 में इनका निधन हो गया ।

सआदत हसन मंटो

सआदत हसन मंटो उर्दू के सफल साहित्यकार हैं। इनका जन्म सन् 1912 में पंजाब में हुआ था। बाल्यावस्था से ही उन्होंने लिखना आरंभ किया था। बाल मनोविज्ञान के बारीक चित्रण में ये बड़े ही सिद्धहस्त हैं। समाज के कमज़ोर और दलित वर्ग की वेदना का यथार्थ चित्रण मंटो से बत्कर अन्य कोई साहित्यकार नहीं कर सकता है। इनके कुछ प्रमुख रचना संग्रह हैं ; 'धुआँ', 'ठंडा गोश्त', 'मंटों के अफसाने', 'सियाह हाशिये', 'सड़क के किनारे' आदि। मंटो ने बहुत से एकांकी नाटक और फिल्मी कहानियाँ भी लिखी हैं। सन् 1955 में इनकी मृत्यु हो गई।

आशापूर्णा देवी

बँगला भाषा की विख्यात कथाकार श्रीमती आशापूर्णा देवी का जन्म कलकत्ता में 8 फरवरी 1909 को हुआ था। जीवन-भर इन्होंने साहित्य-साधना की और अपनी उत्कृष्ट कृतियों के

द्वारा समाज मे जागरण पैदा किया। भारत सरकार ने **1976** में इनको 'पद्मश्री' की उपाधि से विभूषित किया। इनको कलकत्ता विश्वविद्यालय से 'भुवन मोहिनी' स्वर्ण पदक और पश्चिम बगाल सरकार की ओर से 'रवींद्र पुरस्कार' प्राप्त है।

इनकी प्रमुख कृतियों में 'अग्निपरीक्षा', 'प्रथम प्रतिश्रुति', 'सुवर्णलता' (उपन्यास), 'गल्प पंचाशत' (कहानी संग्रह) आदि उल्लेखनीय हैं। **सन् 1995 में इनका निधन हो गया।**

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1] [संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**
प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,
तथा **उन सब में**
व्यक्ति की गरिमा और [2] [राष्ट्र की एकता
और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 **को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत,** अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

---

1 संविधान (बयालीसवा संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य" के स्थान पर प्रतिस्थापित।

2. संविधान (बयालीसवा संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "राष्ट्र की एकता" के स्थान पर प्रतिस्थापित।

भाग 4 क

मूल कर्तव्य

51 क. **मूल कर्तव्य** – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय मे संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी, और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।